# आस-निरास



राजकुमार

# आस-निरास

[ कहानी-संग्रह ]

राजकुमार

प्रकाशक
गौरी शङ्कर
६४।४४ गोला दीनानाथ,
बनारस।

मूल्य १।।।≈ ]        प्रथम संस्करण        [ २०१०

मुद्रक
रामनिधि त्रिपाठी
शिवराम प्रेस, मध्यमेश्वर, बनारस

# निवेदन

राजकुमारजीने समय-समय पर अत्यन्त सुन्दर एवं भौतिक कहानियाँ लिखी हैं जो हिन्दीके उच्चकोटिके पत्रोंमें प्रकाशित होती रही हैं। प्रायः लोग उनको एक सफल पत्रकारके रूपमें ही देखते रहे हैं। ये कहानियाँ उनके साहित्यिक रूपकी प्रतिष्ठापिका है। साहित्यकार रा॰ कुमारकी ये कहानियाँ स्वयं बोल लेंगी और निश्चय ही हिन्दी-जगत उनकी इन कहानियोंको इनकी रसवत्ता, मार्मिकता एवं भौतिकताके कारण स्मरण करेगा।—इसमें रंचमात्र सन्देह नहीं।

—प्रकाशक

# विषय-सूची

# भूमिका

कलाकारका हृदय चुप नहीं बैठ सकता। धरतीके नीचेका जीवदार पानी पत्थर तोड़कर निकल आता है। प्रकृति अपनी कला छिपा नहीं सकती। कोपलोंमें फूट निकलती हैं। प्रेमी अपने प्रेमकी व्यथा और संयोगकी सुधा दोनोंको दूसरोंके कानोंमें डालना चाहता है। अनुभूति वाला हृदय बिना अपनी अनुभूति व्यक्त किये जी नहीं सकता और हम इस पुस्तकमें एक भावुक हृदयके नेगेटिव प्लेटकी छाप देखते हैं। प्लेट बहुत सचेत होता है। कहीं भी प्रकाशकी रेखा पड़ी सामनेकी चीज उसपर उतर आयी और जब नेगेटिव बन गया तब तो कुछ रासायनिक घोलकी ही आवश्यकता है कागजपर छापनेकी अपेक्षा है। जो कहानियाँ लेखकने इस संकलनमें हमारे सामने रखी हैं वह स्पष्ट ही लेखकके हृदयकी बोली हैं।

इस संग्रहमें लेखककी चौदह कहानियाँ हैं। प्रत्येकमें किसी घटनाका चित्र है। घटना वैसी है जो हमारे बीच होती रहती है। किन्तु प्रत्येक घटना भावुकतासे रंगी है। जैसी सूतकी साड़ीं होती है किन्तु फीरोजी, पिस्तई, बादामी, पियाजी, जोगिया, नारंगी रंगोंसे रंग देनेपर उसकी छटा, उसकी ढब निराली हो जाती है, मनमोहक हो जाती है, इसी प्रकार इन कहानियोंकी घटनाओंको भी लेखकने अपनी कलमसे ऐसा सँवार दिया है कि वह चित्तको आकृष्ट कर लेती है। भाषामें न दार्शनिकोंकी गम्भीरता है जो कानोंको कटु बना देती है न सिनेमा स्टारसा चुलबुलापन है जो केवल नयनाभिराम है और हृदयको स्पर्श नहीं करता।

उत्सुकता कहानीकी प्राण है। संग्रहकी प्रत्येक कहानी अनुप्राणित है। देशमें जो राजनीतिक जागरण हो रहा है उसका प्रभाव किसी

कलाकारपर पड़े बिना रह नहीं सकता। हिन्दू-मुसलमान दंगा, क्रांतिकारी युवकोंका बलिदान कहानियोंके विषय बने हैं, जैसा उसकी कहानी, कर्तव्यकी वेदीपर, दोस्त और दुश्मन कहाँनियों में चित्रित किया गया है। आत्मबोधमें कलाकारकी आत्माका गौरव दिखाया गया है, इसी प्रकार मिट्टीकी मूर्तिमें भी। खंडहरोंके देशमें हिन्दू-मुसलिम सौहार्दयकी कहानी है।

प्रत्येक कहानीके पीछे आदर्श लगा हुआ है। और यह अच्छा है। आदर्शसे लोग चिढ़ सकते हैं। क्योंकि उसके पालन करनेमें कठिनाई होती है। कष्टदायक है। ऐसी कहानियाँ जिनसे हमारी कुप्रवृत्तियाँ जाग जाती हैं। हमारी विलासिताके सागरमें ज्वार लाती है और आत्माकी सफेदीको कालाकर देती है प्रचलित हैं। उनके पाठक भी हैं ही। इस ढंगका पुस्तकें बिकती भी हैं। इनसे रुचिका ही नहीं, साहित्य समाज और संस्कारका भी विनाश हो रहा है। यह बात नहीं है कि संसारमें जो कुछ होता है वह हमारी जानकारीके लिये आवश्यक नहीं है। जीवनके लिये लाभदायक वही है जो बता सके कि क्या होना चाहिए। जो होता है वह तो हम देख रहे हैं या हम उसके अभिनेता हैं। साहित्यकार यदि समाजका नेता है तो उसे हमको मार्ग दिखाना चाहिये। आदर्शका यही अभिप्राय है। हमें प्रसन्नता है कि आस-निरासकी कहानियोंसे हम जीवनकी उन वृत्तियोंकी ओर चल सकते हैं जो हमारे मनको, शुद्ध आत्माको सचेत और बुद्धिको परिष्कृत कर सकते हैं।

कहानी शक्तिशाली शस्त्र है। इन कहानियों द्वारा शस्त्रका उपयोग ठीक ठिकानेसे हुआ है। यह कहानियाँ पाठक जब पढ़ेंगे, उनके मनको संतोष होगा।

काशी

**बेढब बनारसी**

# कर्ता और कृति

व्यक्तिकी अनुभूतियोंने युगोंसे जन-जीवनकी आत्माका शृंगार किया है। साहित्यकी साधना सदैवसे युगके लिए मगल-दीपका कार्य करती रही है। साहित्यका साधनाके मूलमें उत्सर्गकी अनित्य प्राणवान चेतनाका मूर्त्त संकल्प रहता है। साहित्यकार अपने इस संकल्पके लिये चिरन्तन आहुति देकर, अपना सर्वस्व अर्पणकर, अक्षर रेखाओंसे युगके लिये आलोक-स्तम्भका निर्माण करता है। स्नेहकी भाँति अपनी अनुभूतियों और वर्त्तिकाकी भाँति प्राण जलाकर, अपनेको स्वाहा बोलकर प्रकाशकी किरणोंसे प्रगति-पथका वह निर्माण करता है। सत्य, शिव और सुन्दर उसके निर्माणका प्रतिफल हैं। इसीलिए इशावास्योपनिषदमें कर्विमर्नीर्षा परभू स्वयभू का उल्लेख ऋषि-वाक्यके रूपमें मिलता है। ऐसी गहन साधना करने वाला नीलकण्ठ साहित्यकार हुआ करता है जो विषमयी पीड़ाका पानकर अमृत वर्षण किया करता है। उत्सर्गकी आलोकमयी प्रेरणाका प्रतीक-साहित्यकार-हर काल, देश और पात्रमें श्रद्धाविलसित प्रतिष्ठाका अधिकारी माना जाता रहा है। हर एक युगमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं रही है जो 'मूड़ मुड़ाकर सन्यासी' न होते रहे हों। साहित्यके पावन क्षेत्र भी ऐसे लोगकी सदैवसे कृपा रही है। आजके अपने साहित्यके भीतर भी जब कृतियोंका अध्ययन किया जाता है तो ऐसा आभास लगता है कि मटमैले काले दुर्दिनके साधनाहीन बादल साहित्यके आकाशपर छा गये हैं। परिणाम स्पष्ट ही है, गरजकर जहाँ बरसे, बिला गये। पर सौभाग्य है हमारा और राष्ट्र-भारतीका कि आज भी ऐसे साहित्यकार आजके प्रचारवादी युगमें वर्तमान हैं जो साहित्य-साधनाकी भारतीय परम्पराके सन्देश वाहक हैं। ये जीवनकी अनुभूतियोंके शिल्पी हैं, अभिव्यक्तिके बुद्धिवादी

व्यापारी नहीं। ये साधनामें विश्वास रखने वाले चेतना सम्पन्न प्राणवान व्यक्ति हैं, जो अपनी अनुभूतियोंके मर्मका मूल्य सभी दृष्टियोंसे समझते हैं। उन्हींमें मैं श्री राजकुमारकी भी गणना करता हूँ और इस गणनामें गौरवका अनुभव करता हूँ। मेरी यह धारणा उस समय बनी जब मैं कालेजका नहीं, एक विद्यालयका विद्यार्थी था। उसी समयसे उनकी कहानियाँ मैं पढ़ता रहा हूँ। शैशवकी बनी धारणाओंमें पवित्रता अधिक होती है और बुद्धिके क्षेत्रमें प्रविष्ट होनेपर धारणा की यह पवित्रता, निरन्तर बढ़ती गयी, साधनाके मूल्यांकन का इससे महत्व दूसरा साधन नहीं।

किसी भी साहित्यकारके व्यक्तित्वको समवेत रूपसे समझनेका दावा करना तबतक मर्यादित नहीं जब तक उसके जीवनकी प्रत्येक छोटी-मोटी परिस्थितियों एवं वातावरणका सम्यक अनुभूति प्रवण ज्ञान न हो। राजकुमार जीको मैंने देखा है, उनके हृदयको देखा है निकटसे देखा है; पर उसे समझनेका प्रयत्न मुझे कभी नहीं करना पड़ा। इसलिए कि उनके व्यक्तित्वको उलझा हुआ सुनकर भी सुलझा हुआ पाया है। जीवनके किस विकास क्रमने उन्हें साहित्यकी ओर उन्मुख किया यह तो नहीं जानता पर इतना अवश्य जानता हूँ कि उनके मर्ममें साहित्यकी वाणी है।

प्रायः राजनैतिक पुरुषोंसे जब साहित्यकी बात या उनके साहित्यकार होनेकी बात सुनता हूँ तो एक प्रकारकी स्मितिभरी घबड़ाहटका अनुभव करता हूँ। ऐसी मेरी आदत है। पर इस आदतके विश्वासमें थोड़ेसे ही ऐसे राजनैतिक पुरुषोंकी कृतियाँ अपवाद प्रतीत हैं जो जन-मंगलके लिए राजनीतिके क्षेत्रमें आये पर उनका हृदय अनुभूतियोंका अक्षय भण्डार रहा है। राजकुमार जी भी उनमें ही हैं जिन्हें सबल आस्थाके साथ साहित्यकार अधिक समझता हूँ, भले ही परिस्थितियोंके कारण उन्हें राजनीतिमें पदार्पण करना पड़ा हो। राजकुमार जी उन लोगोंमें

हैं जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलनमें, पीड़ित प्रताड़ित जनताकी कराह सुन अपनी शिक्षाको उत्सर्गकर, अपने भविष्य निर्माणको लोक-कल्याणकी अग्निमें आहुति दे, भाग लिया। 'कृष्ण मंदिर' में अपने यौवनके उमड़ते स्वर्णिम दिन मुस्कराते हुए उन्होंने व्यतीत किए। बापू द्वारा आहूत व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन और ४२ की जन-क्रांति दोनोंमें उन्होंने अपने ढंगका अनूठा उत्सर्ग दिखाया। साथ ही अध्ययनकी महत्तम गरिमासे वे नाता भी जोड़े रहे। जेल यात्राके पूर्व ही उनके कहानी-कारका हृदय मुखरित हो उठा था। जेल जीवनके पश्चात् प्रमुख रूपसे उन्हें लोग पत्रकारके रूपमें देखते रहे। हिंदीमें आज तक राजनिति-की जितनी भी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, उनमें 'युग धारा' का इतिहास किसीसे कम गौरव पूर्ण नहीं। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि वैसी गंभीर, ठोस राजनैतिक पत्रिका आज तक हिंदीमें प्रकाशित हुई ही नहीं। उसके संपादनके क्षेत्रमें जिस गंभीर अध्ययन तथा दायित्वका परिचय राजकुमार जीने दिया वह उनकी अध्ययन मूलक भावनाका परिचायक तथा उनकी कार्य-दक्षताका प्रतीक है। उसके पश्चात् 'बनारस' का इतिहास सबके सामने हैं। उसके बीजारोपणसे लेकर उन्नयन और विकास तककी कहानीके नायक राजकुमार जी हैं जो अपनी कल्पनाको मूर्त्तरूप देनेके लिए दिनरात आस्था पूवक कार्य-रत् हैं।

जेल–जीवनके पश्चात् हिन्दीके प्रायः सभी प्रमुख पत्रोंमें उनकी कहानियाँ छपती रही हैं। उन कहानियोंमें उनके मर्मकी आत्मा, जो उत्सर्गकी भावनासे दीप्त है, जीवित और जागरूक है। समष्टिके लिए ही नहीं व्यक्तिके लिए भी राजकुमारका एक व्यक्तित्व है। इस व्यक्तित्व-ने सत्यके आग्रह पर झूठ से कभी समझौता किया ही नहीं। मैंने उन्हें उन लोगोंमें पाया है जो अपने सिद्धान्तोंके लिए, अपने आदर्शोंके लिए प्राणोत्सर्ग तकके लिए तैयार रहते हैं। उत्सर्गकी भी विभिन्न श्रेणियाँ हैं।

सात्विक उत्सर्गको ही मैं साहित्यकी मूल-प्रेरणा वृत्तिका जनक मानता हूँ। राजकुमार उत्सर्ग स्वार्थके लिए नहीं करते। जहां उनमें मैंने चट्टान सी अपने कार्योंके प्रति निष्ठा पायी है, वहीं उन्हें बड़ोंके प्रति श्रद्धाविनत हो झुकते भी देखा है। मैं इसे चरित्रकी महानता मानता हूँ। मित्रोंके लिए उत्सर्ग, बड़ोंके लिए श्रद्धा, सबके लिए त्याग, करते हुए तथा अनाचारसे संघर्ष करते हुए तो मैंने उन्हें सदैव पाया पर अपने लिए उन्हें कभी कुछ लेते नहीं पाया है। संभवतः इसीलिए उन्हें इसके प्रतिदान स्वरूप जीवनका सबसे बड़ा सत्य, अनुभूतियोंके रेखाकंनकी क्षमता विधाताने वरदान स्वरूप प्रदान की, जिसका मूर्त्तरूप 'आस-निरास' की कहानियाँ हैं।

यद्यपि उन्होंने ६०-६५ कहानियाँ तथा अनेक गंभीर निबंध लिखे हैं तो भी इस संग्रहमें केवल १४ कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रहमें चयनकी विशेषता मुझे यह लगी कि प्रायः उनकी कहानियोंके विविध प्रकारके नमूने इसमें आ गए हैं। बुद्धिवादी जगतने आज तक कोई ऐसी तुलाका निर्माण नहीं किया जिसपर ठीक ठीक किसीके साहित्यको तौला जा सके। ऐसी परिस्थितिमें प्रभावकी समन्वतिको ही मैं आधार मानता रहा हूँ।

यदि इस तुला पर तौला जाय तो कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि ये कहानियाँ कितनी सफल हैं। जहाँतक भावनाओंका प्रश्न है प्रत्येक कहानी भारतीय मर्यादाके भीतर यथार्थ चित्रोंके द्वारा आर्दश की प्रतिष्ठा करती दिखेगी। पर इस आर्दशमें व्यक्ति राजकुमार मात्र-का आर्दश नहीं भारतीय जीवनको चेतना प्रबुद्ध करनेवाले भारतीय विकास शील आर्दशोंकी प्रतिकल्पना सन्निहित है। बननेकी कला राज-कुमारके जीवनमें रही नहीं, इसलिए कहानियाँ भी जो कुछ कहना है विश्वास पूर्वक सहज ही अपनी बनकर अपनी बात पाठक से कह लेती हैं। कथाकारकी यह बहुत बड़ी सफलता है। जहाँतक शिल्प-विधिका प्रश्न है,

शैलीगत विशिष्टता तथा प्रवाहगत चेतना इन कहानियोंमें मिलेगी ? हिन्दीके नयी पीढ़ीके कहानीकारोंमें अपने इन सहज गुणोंके कारण निश्चय ही इन कहानियोंका अत्यन्त गौरवमय स्थान होगा ही। इन कहानियोंके प्रति मुझमें श्रद्धा नहीं, ममता है। ममताकी वाणी मौन हुआ करती है। जिनके हाथमें यह कृति है, वे स्वयं ही देख, सोच और समझ लें इन कहानियोंके सम्बन्धमें मैं अब केवल इतना ही कहना चाहूँगा जो इसी संग्रहकी कहानी मिट्टीकी मूर्त्तिमें 'कमल'ने कहा है—

"कष्टके लिए क्षमा चाहता हूँ महाशय, इस मूर्त्तिकी सुन्दरता देखते-देखते मैं वेसुध सा हो गया हूँ, देखिये न आप भी, कितनी कला-पूर्ण है यह मूर्त्ति !"

काशी

सुधाकर पाण्डेय

——●——

# आस-निरास

शैलेशको आज भली-भाँति मालूम हो गया कि कामना और उसकी सफलताकी कल्पना भ्रान्त हृदयका एक स्वप्न है—इन्द्र-जाल सा मोहक; यौवन-सा आकर्षक !

कामना और उसकी सफलताकी कल्पना कितनी सरल, और मधुर प्रतीत होती है। किन्तु, जब व्यवहार-पथपर असफलता और निराशका अमूर्त रूप पग पगपर स्पष्ट होने लगता है, तब कल्पना-लोककी वासन्ती वाटिकामें भ्रमण करनेवाले प्राणी-को भलीभाँति ज्ञात हो जाता है कि कामनाकी सफलता कण्टका-कीर्ण-पथकी वह अंतिम मंजिल है जहाँ पहुँचते पहुँचते मनुष्यकी क्षत-विक्षत आत्मा कराह उठती है—पागल, अब और कहाँ ? यह मृग-तृष्णा है—तेरा अन्तकर देगी। और तब ?

भाग्यकी क्रूर क्रीड़ासे संत्रस्त प्राणी उस दुनियामें जानेके लिए उत्कंठित होने लगता है जहाँ केवल वह हो। जहाँ इस भीड़ भरे विश्वके किसी प्राणीसे उसका साक्षात्कार सम्भव न हो और

जहाँ वह एकाकी जीवन-सरिताकी शून्य धारामें निर्विरोध संतरण कर सके।

शैलेशकी भी कुछ ऐसी ही दशा हो गयी थी। कारण किसीने एक बार पूछा और किसीने दो बार। शैलेशने किसीसे कुछ कहा और किसीसे कुछ!

दिवस और निशाकी अनवरत गतिसे जीवन की होड़के कारण लोग शैलेशको या यों कहें उसमें उदित नवीनताको, भूलसे गये। हाँ, नहीं भूले तो केवल दो प्राणी। शैलेशकी पत्नी चन्द्रा और न भुला सकनेवाला स्नेही सखा अजय!

अजय सोचता चन्द्राको कुछ न कुछ तो अवश्य ही मालूम होगा और चन्द्रा सोचती—क्या सचमुच अजय भी कुछ नहीं जानता!

उस दिन चन्द्राके पूछनेपर अजयने उत्तर दिया,—'नहीं भाभी मुझे सचमुच कुछ भी नहीं मालूम। मैंने लाख-लाख प्रयत्न किया लेकिन अभीतक कुछ भी नहीं जान पाया हूँ। अभी उस दिनकी ही बात है; पूछनेपर शैलेशने कहा था,—'अजय प्रकृति परिवर्तनशील है। हृदयकी प्रेरणा कभी एक सी नहीं रहती। परिवर्तन ही सत्य है, शिव और सुन्दर। इसे लक्ष्यकर आश्चर्यचकित होना उस सत्ताके प्रति जो विश्वके अणु-अणु और परिमाणु निहित है, अविश्वास प्रकट करना है!' उसकी दार्शनिक बुद्धिको लक्ष्य कर मैं हतबुद्धि सा हो गया था और फिर कुछ पूछ न सका था।'

चंद्राने मौन रहकर सुना था—मौन ही रही!

कहते हैं, पत्नी अपने पतिको हमेशा संदेहकी दृष्टिसे देखा करती है। किन्तु वे भूल जाते हैं कि वस्तुतः वह संदेह, संदेह नहीं होता। वह होती है केवल पतिके प्रति पत्नीके अगाध प्रेमकी कोमल और मधुर प्रतिक्रिया जो पत्नीके हृदयमें पति-प्रेमको नित नूतन बनाये रखती है। पतिके अन्दर उत्पन्न परिवर्तन और उसका स्थायित्व

तथा परिवर्तनके कारणको पत्नीसे छिपानेकी पति की चेष्टा पत्नी-के हृदयमें संदेहका बीज बो देती है और इस संदेहकी प्रतिक्रिया,-अगर पति-पत्नीके बीच अगाध दाम्पत्य प्रेम रहता है—तो उपेक्षाकी सृष्टि करती है जिसके गर्भमें स्नेहपूर्ण विषण्णताका बीज वर्तमान रहता है। हाँ, अगर पति तथा पत्नीके बीच मनमुटाव पूर्वसे ही विद्यमान रहता है, तो सन्देह भयावह कलहका कारण होकर दोनोंके जीवनको असहनीय अशान्तिमें परिणत कर देता है।

शैलेशके जीवनमें होनेवाले परिवर्तनका प्रभाव चन्द्राके जीवनपर भी पड़ा। प्रतिक्रियाने अपना काम किया। चन्द्राने खो दी, अन-जानमें ही, गिलहरी-सी चपलता और कलिकासी मादकता। हृदयका स्पन्दन-स्वर कुण्ठित-सा हो रहा।

शैलेशने चन्द्राको देखा और चन्द्राने शैलेशको। दोनों दो किनारोंपर खड़े थे। बीचमें थी निराशा-प्रसूत प्रणयपूर्ण उपेक्षाकी सरिता। वियोग सहन न हुआ। एकने संकेत किया दूसरेने स्वीकृति सन्देश भेजा और कूद पड़े दोनों।

हरित परिधानावेष्ठित-कूलपर बैठे थे—शैलेश और चन्द्रा। शैलेशने कहा—'चन्द्रा!'

उपेक्षित-उदास चन्द्राने देखा मोहमयी आँखोंसे शैलेशको।

'रानी!' शैलेशके स्वरमें थी वेदना।

'स्वामी?'

'समझता हूँ, तुम्हें मेरा व्यवहार अच्छा नहीं लगता।'

'जानबूझकर आँखें बन्दकर अन्धकारमें भटकते रहनेकी भाँति अन्धे होकर अन्धकारमें भटकना तो रुचिकर नहीं हो सकता।'

शान्त वातावरण। लहरियोंका चंचल आलोड़न। ज्योत्स्ना स्नात सरिता-तीर। कहा शैलेशने—'चन्द्रा, जीवन इतना सरल नहीं। परिस्थितियोंकी प्रतिकूल लहरें जब आकांक्षाके काष्ट-खण्डको

दिग्भ्रान्त होकर बहनेके लिये विवशकर देती हैं, तब मनुष्यकी सम्पूर्ण विचार-शक्ति वाष्प बनकर असीमके गर्भमें समा जाती है।'

शैलेश चुप हो गया। बरगदकी सघन शाखाओंने उसके मुख-प्रदेशपर उदासीका वितान तान दिया। उसकी आँखें किनारेसे दूर चली जा रही एक किश्तीपर जम गयीं। चाँदनीमें चमकनेवाला किश्ती का सफेद पाल हवासे भरा था। किश्ती लहरियोंसे अठखेलियाँ करती हुई आगे बढ़ रही थी। शैलेशने पुनः कहना आरम्भ किया—'आवश्यकताकी बढ़ती हुई भीड़को कमकर सकनेमें मनुष्य जब असफल हो जाता है और उसको अपने श्वासकी गति रुद्ध-सी होती जान पड़ती है, तब वह एक ऐसे साथीको पानेके लिए आकुल हो जाता है जो उसकी बातोंको उसके ही दृष्टिकोणसे समझ सके। एक ऐसा साथी, जो विद्वान न हो; ऐसा विद्वान, जिसकी विश्लेषणात्मक बुद्धि साधारणको असाधारण करनेकी क्षमता रखती है। ऐसा साथी, जो मूर्ख न हो; ऐसा मूर्ख, जो वस्तुको समझनेकी क्षमता रखते हुए भी समझ न सकता हो। जो रुक-रुककर चल सके और चलता-चलता रुक सके। जो त्यागकर ग्रहण कर सके, ग्रहणकर त्याग देनेकी इच्छामात्रसे भी वंचित हो।' शैलेश एक बार पुनः चुप हो गया। शुभ्र नील गगनमें बिहँसनेवाले चाँदके ऊपर सफेद बादलका झीना टुकड़ा नकाबकी तरह आकर पड़ गया। उसी समय किसी बालकके मनोरंजनका साधन, कागजकी एक नाव किनारेसे आकर लग गयी।—मानों यह कहने आयी हो कि भावुकका स्वभाव कागजकी नावकी भाँति होता है, उसे डूबते देर नहीं लगती।

हतबुद्धि-सी चंद्रा तो कुछ बोल ही नहीं सकी। सम्भवतः वह शैलेशके भावोंका अर्थ समझनेके लिए ही मौन थी। व्याप्त गम्भीर निस्तब्धताको और भी गम्भीर करते हुए शैलेशने कहा—'मुझे एक

ऐसे ही साथीकी आवश्यकता प्रतीत हुई। मैंने मौन रहकर किन्तु आंखें खोल कर खोजनेका प्रयास किया—करता रहा किन्तु...'

शैलेश चुप हो गया। चन्द्रा भीतर ही भीतर रो पड़ी। उसे अपना रोम-राम काँपता-सा मालूम पड़ा—अविश्वास! इन शब्दों-का अर्थ ही क्या हो सकता है! भगवन्, यह कैसी उदासी! कैसा अवसाद! विक्षिप्त प्रायः हृदयकी करुणाका जीवन स्पन्दित हो रहा है इन निर्जीव शब्दोंमें! मैंने कब और कहां स्वामीके हृदयमें अविश्वास उत्पन्न होने दिया। फिर यह भ्रान्ति कैसी? लगता है स्वप्नमें बातें कर रहे हैं। पूर्वकी चपलता, अनावश्यक बातोंमें स्वामीको फँसा रखनेकी चेष्टाका अभाव ही तो कहीं इसका कारण नहीं? मेरे भी स्वभावको क्या हो गया? लेकिन मैं करूँ भी क्या? जिस दीपकी प्रभा ही मेरे जीवनका आलोक है, उसके निष्प्रभ हो जाने पर मेरी उज्वलताका नष्ट हो जाना तो स्वाभाविक ही है। आह, कितना चाहा जान सकूँ उनके-जीवनके बोझिल-भारको!

चंद्राकी तंद्राको भंग करते हुए शैलेश ने कहा—'चंद्रा!'

शशिकी दुग्धफेनिल रश्मियोंकी प्रभामें पगी नयन-प्रस्वित मुक्तावलीसे सज्जित मुखको उठाकर चन्द्राने शैलेशको देख भर लिया—बोली कुछ भी नहीं।

शैलेशने चन्द्राकी ओर देखा नहीं। उसकी आँखें दूर-दूर से लहरा लहराकर किनारे आनेवाली तथा पुनः किनारेसे टकराकर दूर चली जानेवाली लहरोंपर जमीं थी।

'रात अधिक हो गयी है, घर चलो!' चन्द्राने धीरे से कहा।

'घर!' शैलेशको जैसे काठ मार गया! 'मेरी धारणा, मेरी कल्पना—सब झूठ! चन्द्राने कुछ भी नहीं पूछा—कुछ भी नहीं कहा!'

विधाताकी सृष्टि-शक्तिकी रहस्यमयी विडम्बनाको कौन समझ सका है !

× × ×

जीवन-संघर्षमें बारबारकी असफलताने शैलेशके जीवनकी सारी क्रियाशीलताको नष्टकर अन्ततः उसके जीवनको निश्चेष्ट बना डाला था। भाग्यकी क्रूरतासे विक्षुब्ध होनेके कारण वह अपने हृदयमें निहित विस्तृत मर्मस्पर्शी दारुणताको किसीके सम्मुख प्रकट नहीं करना चाहता था। नियतिकी विडम्बनाओंसे पराभूत शैलेश, इस मायावी जगतकी क्षुद्र आत्माओंके सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत न था।

एक,—फिर दो—फिर तीन—दिन क्रमशः व्यतीत होते रहे। निश्चेष्ट हो रहे जीवनकी असीम उदासीके कारण वह कभी किसी बातपर मनोयोगसे विचार ही नहीं कर पाता था। इसी बीच चन्द्राके स्वभावमें क्रमशः होनेवाले परिवर्तनने उसके अनियंत्रित मस्तिष्ककी अनिर्दिष्ट विचार-धाराको एकमात्र चन्द्राकी ओर प्रवाहित कर दिया। और तभी उसे प्रतीत हुआ, वह चन्द्राको कितना अधिक प्यार करता है। लगा उसे, उसकी उजड़ी हुई वाटिकाको चन्द्राका स्नेह-वारिद ही पुनः लहलहा सकता है। केवल चन्द्राही निराशाग्निसे दग्ध हो रहे हृदयको प्रालेय कण बनकर शीतल कर सकती है। उसके निश्चेष्ट हो रहे जीवनको गतिशील बनानेकी शक्ति एकमात्र चन्द्रामें ही है।

इसी प्रेरणाके वशीभूत होकर उस दिन शैलेशने सरिता-तीरपर जीवनवीणाके टूटे हुए तारको जोड़नेका प्रयास किया था—चन्द्रासे कुछ कह कर ! कहा था केवल इसलिए कि चन्द्रा उससे कुछ पूछेगी, सान्त्वना देगी। और वह—? वह अपने सारे भारको फेंक देगा—

एक साथ ही ! किन्तु कहा था कुछ चन्द्राने ? पूछा था कुछ ?—नहीं !

वहाँसे लौट आनेपर सोचता रहा शैलेश—मुझे क्या मालूम था कि मेरे द्वारा की गयी अवहेलनाका पूरा-पूरा बदला लेनेके लिए चन्द्राका नारी-सुलभ गर्व उस समय भी जाग सकता है, जब मुझे उसकी प्यार भरी सहानुभूति की अविलम्ब आवश्यकता है। छिः, मैं क्या सोच रहा हूँ। प्रतिशोधककी भावना चन्द्राको छू भी नहीं सकती ! कौन कह सकता है कि जीवनके रंगमंचपर होनेवाले भाग्य के कुटिलतापूर्ण अभिनयकी दारुणतासे मुक्ति पानेकी लिए ही वह ईश्वरसे प्रार्थना नहीं कर रही थी।

'स्वामी !' शैलेशकी विचार धाराको भंग करते हुए सहसा चन्द्राका आर्द्र कण्ठस्वर उसके कर्णरन्ध्रोंमें प्रविष्ट हुआ। उसने घूमकर पीछे देखा। चन्द्राको देखकर लगा उसे—चन्द्रा वेदनाकी वह प्रतिमूर्ति है जिसे शिल्पी अपने हृदयकी एकांत अनुभूति कह कर अपनेका गौरवान्वित समझ सकता है।

एकबार पुनः शैलेशने चन्द्राको देखा और चन्द्राने शैलेशको। लगा उसे, नित नूतन हास-विलाससे दोलित रहने वाला आनन विषादके घने मेघ-खंडोंसे आवृत्त रहनेके कारण अपनी सारी मधुरिमा खो बैठा है।

वेदना-विह्वल चन्द्राको देखकर शैलेशके हृदयका अनुताप उसके मुखपर छा गया।

कहा चन्द्राने,—"इस विरक्ति, इस अन्यमनस्कताका निर्मम उपहास हमारे जीवनको ज्योतिहीन करता जा रहा है स्वामी। इस अर्थशून्य मौनका कारण नहीं जानती। नहीं जानती किस विपत्तिका व्यथा-भार तुम्हारे जीवनको निरन्तर जर्जर करता जा रहा है। क्या तुम्हारी विपत्तिमें योग देनेका मुझे कोई अधिकार नहीं ?

अपने उत्तप्त नयनों को चन्द्राकी लबालब भरी नयन-कटोरियों से शीतल करते हुए शैलेशने कहा—'जानती हो चन्द्रा—शायद नहीं जानती ! जिस प्रश्नको तुमने आज पूछा है, इसे मैंने उस दिन ही सुनना चाहा था । काश् मनुष्य मनचाही...

'मुझे क्षमा करो ! तुम्हें किस वस्तुकी किस समय आवश्यकता होती है, यदि इतना ही समझ पाती तो...

'नहीं चन्द्रा...' व्यथित चन्द्राकी बातको काटते हुए शैलेश बोल उठा...'भावुकताके कारण भूल न कर बैठना, चन्द्रा ! अभिमुख वातावरणकी प्रतिक्रियासे मनुष्य अपनेको कभी कभी वंचित नहीं रख सकता । जानती हो, कभी-कभी मनुष्य अभिप्सित कार्यको पूरा करनेका साधन पाकर भी कालकी प्रतिक्रियाके कारण उसे पूरा नहीं कर पाता । तुम्हारा रंच मात्र भी दोष नहीं है । दोषी मैं ही हूँ, यह स्वीकार करना भी कोरी विडम्बना ही होगी ।

शैलेश चुप हो गया । वात-लहरियोंपर आरूढ़ होकर दूरसे आनेवाली बंशीकी वेदना-ध्वनि हृदयमें सिहरन पैदा करती हुई असीमके गर्भमें समा गयी । शैलेशने पुनः कहना प्रारम्भ किया—'असफलता-प्रसूत उन्मुक्त उत्पीड़नकी विकल थपकियाँ जब मेरी आँखोंको बरबस उनींदी करती हुई निराशाके अंधकारको क्रमशः घनीभूत कर रही थी,—मैं भूला नहीं हूँ, तुम्हारी प्रेरणाने ही मुझे प्रकाशका दान दिया था । मेरा जीवन ही तुम्हारा है चंद्रा ! तुम्हें दे सकूँ, ऐसी कोई भी वस्तु मेरे पास शेष नहीं । क्षमा-धनकी याचना मझे लज्जित कर रही है ।'

शैलेश चुप हो गया । खोयी-सी, ठगीसी चंद्रा देखती रही उसका मुख !

शुभ्र नीलाम्बरसे पीपलकी सघन डालपर उतरकर अंधकारका

चुम्बन करनेवाली ज्योत्स्नापर दृष्टि निक्षेप करते हुए शैलेशने चंद्राके मुखको अपने वक्षःस्थलपर रखकर कहा...'मनुष्य पूर्ण नहीं है चंद्रा। परिस्थितियोंसे शिक्षा लेकर ही वह अपनेको सफल बना सकता है।'

---

# आत्म-बोध

कल्पनाकी रिक्त-झोलीको भावनासे भरकर युवकने भारमुक्त होनेकी चेष्टा की। दुर्बलता लक्ष्यकर कल्पना मुस्करा पड़ी। सरल, सलोनी भावना निखर गयी। युवक द्विगुणित उत्साहसे आगे बढ़ा। सहसा कल्पनाने पाँव खींच लिये।

—'मेरी विवशतासे अनुचित लाभ उठानेकी चेष्टासे तेरी साधना भग हो जायगी कलाकार। क्षणिक संतोष आत्म-परिहास है। स्वप्न-जगतकी सृष्टिका प्रयास तुझे अनुभूत-संस्कारोंसे दूर ले जावेगा। स्थिर रह; तेरा कल्याण होगा।'

मनकी विकाशोन्मुख क्रियाने युवकको चैतन्य किया। उसे अपनी स्थितिका ज्ञान हुआ।—'मैं, मैं बंदी!'

लौह-शृंखलाकी झन-झनने युवककी विचार-धाराका मार्ग रुद्ध कर दिया।

प्रहरी सैनिक ने पीछे खड़े अनुचरकी ओर संकेत करते हुए कहा—जल प्रस्तुत है अपरिचित-बंदी। नित्य क्रियासे निवृत

हो जाओ। दो पहरके बाद तुम्हें राज-सभामें उपस्थित होना होगा।'

प्रहरी—।

क्या है युवक ?;'

दो प्रहरके बाद मेरे भाग्यका निर्णय होगा न ?

सम्भवतः·············।

बता सकते हो—किस प्रकारका दंड मिलेगा ?

मैं साधारण प्रहरी हूँ युवक ! निर्णय करने वाली सभाका सदस्य नहीं !—क्या बताऊँ ।

अच्छा, तुम जा सकते हो !' खिड़कीमें बैठे-बैठे सरित-तीरके मन-भावन दृश्यकी ओर देखते हुए युवक बोला।

प्रहरीने आश्चर्यसे युवककी ओर देखते हुए कहा—'जाऊँ ? जाऊँ कैसे !'

'क्यों, क्या हुआ।' युवकने सरल भावसे कहा—जिस भाँति आये थे, उसी भाँति जा भी सकते हो। कोई रोक तो है नहीं।'

'लेकिन तुमने अभी मुँह तक धोया नहीं।'

'ओह, मेरी बात ! मुझे यों ही छोड़ दो।'

'बन्दी युवक।'

'क्या है प्रहरी ?'

'एक ही रातके कारावाससे घबड़ा गये !'

'सच-सच बता दूँ।'

'क्या ?' प्रहरीने प्रश्न किया।

'तुम्हारे प्रश्नका उत्तर।'

'मेरे प्रश्नका ?'

'हाँ हाँ, तुम्हारे प्रश्नका।'

'क्या ?'

'अभी अभी तुमने पूछा था न कि एक ही रातके कारावाससे घबरा गये।'

'ओह!' प्रहरीने मुस्कराते हुए कहा—'इसे तो मैं स्वयं ही समझ गया हूँ।'

'किसीकी आत्मानुभूतिको दूसरा कैसे समझ सकता है, प्रहरी!'

'अच्छा, जल-पात्र यहीं रख देता हूँ। आवश्यकताके समय उपयोग कर सकते हो।' प्रहरीने घूमते हुए कहा—

'अब जा रहा हूँ।'

'जा रहे हो?'

'हाँ, समय हो गया। अब जाना ही होगा।'

प्रहरी पीछे लौटा, द्वार खींचकर बन्द कर दिया उसने। युवकके नयन-विहग उड़ चले बरबस, द्वारकी ओर। वह धीरेसे बुदबुदाया—'मैं अपनी साधनाको नष्ट न होने दूँगा।'

× × × ×

सिंहासनारूढ़ महाराजने युवकको लक्ष्य कर कहा—'युवक, तुम कलाकार हो न?'

'महाराजका प्रश्न निराधार है।' युवकने कुछ हिचकिचाकर कहा।

'इसका अर्थ?'

'उपस्थित युवक कलाकार नहीं।' युवकके स्वरमें दृढ़ता थी।

'युवक, मैं राज्याधिकारी हूँ।'

'जानता हूँ, महाराज।'

'और तुम मेरे बन्दी हो।'

'हाँ.........हूँ।'

'तुम यह भी जानते होगे कि मेरे संकेत मात्रसे ही कारावासकी भयावनी यातना तुम्हारे गले पड़ सकती है। फिर भी तुमने मेरे सम्मुख झूठ बोलनेका साहस किया ! '

'मैं महाराजसे पुनः विचार करनेकी प्रार्थना करता हूँ। दोषारोपण मिथ्या है।'

युवककी वाणी सुनकर सभासदोंको बड़ा कौतूहल हुआ। उनकी आंखें एक साथ ही महाराजकी ओर घूम गयीं। महाराजने युवककी ओर नेत्र गड़ाकर देखते हुए कहा—'तुम क्या कहना चाहते हो ?'

'केवल न्याय चाहता हूँ, महाराज।'

'न्याय ही होगा, युवक।'

युवक मौन रहा। सभासदोंकी दृष्टि उसपर जमी हुई थी। उसके स्कन्धयुगल काली-काली घुँघराली लटोंके आश्रयस्थल बने हुए थे। आकर्ण-विस्तृत अपलक-नयन राज-मुखपर अड़े थे। बिम्बोष्ठोंपर मौन-गम्भीरता जमी थी।

महाराजके गम्भीर कण्ठ-स्वरसे सभा-मण्डप गूँज गया— 'युवक, तुम्हें स्मरण होगा। कल राजाज्ञाकी अवहेलना करते हुए तुमने कहा था कि कलाकार निर्बन्ध स्वीकार नहीं करता।'

'महाराज उपयुक्त वचन इस युवकके नहीं।'

'तुम्हारे नहीं ? राजाके साथ सभासद् भी आश्चर्यपूर्ण नेत्रोंसे युवककी ओर देखने लगे !

'नहीं......।'

'नहीं !—फिर किसने कहा था ?'

'युवक 'कलाकार' ने।' निस्तब्धता और भी गम्भीर हो गयी।

और कोई अवसर होता तो महाराज भी सभासदोंकी भाँति युवकको कुछ-कुछ पागल समझ लेते। युवककी प्रशंसनीय संयमित निर्भयताने सभासदोंके अप्रकाशित निर्णयकी छाया तक महाराजके

मनपर नहीं पड़ने दी। युवकसे शीघ्रातिशीघ्र कुछ जान लेनेकी तृष्णा तीव्रतर होती जा रही थी। उन्होंने संयत स्वरसे कहा—'स्पष्ट कहो, तुम कहना क्या चाहते हो।'

'महाराज', क्षणभर चुप रहनेके बाद युवकने पुनः कहा—जिसने महाराजकी आज्ञाकी अवहेलना की थी, उसका अस्तित्व कारागृहमें ही नष्ट हो चुका है।'

'कारागृहमें!' आश्चर्यान्वित सभा-सदोंकी एकाग्रताको अपनी तीव्र वाणोंसे भंग करते हुए महाराजने कहा—'मैं जानना चाहता हूँ, वह कौन था? तुम्हारा उससे क्या सम्बन्ध था?'

'किन्तु महाराज......।'

'किन्तु क्या?' महाराजने शीघ्रतासे प्रश्न किया।

'कुछ समय लगेगा।'

महाराजने एक बार युवकको नीचेसे ऊपरतक गौरसे देखा। तत्पश्चात् बोले—'जो कुछ कहना है, शीघ्र कहो।'

सभासदोंके कान खड़े हो गये। युवकने धीरेसे कहा—'अच्छा।' और चुप हो गया। सम्पूर्ण सभा उत्सुकतासे प्रतीक्षा करने लगी। व्याप्त निस्तब्धताको भंग करते हुए युवक बोला—'कल की बात है। संध्याका समय था। नव-वेलाका सुखद सन्देश लिए तिमिर-रेखा क्षितिज-पटकी ओटमें खड़ी थी। युवक कलाकार उसे मोहमयी आँखोंसे देख रहा था। कबतक देखता रहा, यह उसे अन्ततक ज्ञात नहीं हुआ। सहसा अभिसारिका रजनीको देखकर उसकी तन्द्रा-भंग हुई। उसका युवक-हृदय कसी हुई वीणाके तारोंके सदृश्य झंकृत हो गया। सूनापन अच्छा नहीं लगा। किसीसे मिलनेकी तीव्र इच्छाने उसे आकुल कर दिया। प्रतीक्षा खलने लगी। विह्वल युवकने मनोराज्यकी देवीके पास 'स्वर' से सन्देश भेजा। मानिनी 'रागिनी' आयी नहीं। युवकने

सु-चतुरा 'लय'का सहारा लिया। 'लय' 'रागिनी'को मनाकर ले आयी। युवक खिल उठा। किन्तु...कुछ संभलकर युवक कहने लगा—'ईर्ष्याग्नि-दग्ध-पवनसे सुखद मिलन देखा न गया। उसने राजाके कान भरना आरम्भ किया। राजाको स्वर-लहरीने मुग्धकर लिया। उसने अनुचर भेजकर गायकको बुला भेजा। राजाकी आज्ञाको असमयमें सुनकर युवक क्षुब्ध हो गया और दुःखित हृदयसे 'रागिनी'को छोड़कर राजसभामें उपस्थित हुआ।

'रागिनी'को उपस्थित करनेके लिये राजाने अपरिचित-कलाकारसे अनुरोध किया। कलाकारने असमर्थता प्रकट कर दी। खिन्न होकर राजाने राजाज्ञाके नामपर 'रागिनी'को उपस्थित करनेकी आज्ञा दी। युवकने उसे अपमान समझा। आत्म-गौरवरक्षार्थ उसने आज्ञा अस्वीकार कर दी।'

कुछ रुककर युवकने पुनः कहना आरम्भ किया—'शक्ति'का उपासक 'कलाके पुजारी' के सन्मुख अपनी पराजय कैसे स्वीकार करता! उसकी आज्ञाके कारण कलाकार वन्दी बना लिया गया।'

युवक चुप हो गया। खड़ा-खड़ा न जाने क्या सोचने लगा। पर्याप्त प्रतीक्षा करनेके उपरान्त महाराजने कहा—'फिर क्या हुआ कलाकारके प्रतिनिधि?'

'महाराज।'

'......!'

'स्वतन्त्र विहगकी भाँति स्वच्छन्द घूमनेवाले कलाकारको कारा-गृहका सीमित क्षेत्र भला नहीं लगा।' युवक कहने लगा—'विवश था—करता क्या। विह्वल मनको समझानेके लिये उसने 'कल्पना'का सहारा लेनेकी चेष्टा की। 'कल्पना'से युवक कलाकारका ह्रास नहीं देखा गया। उसने आत्मानुभूति बनकर कलाकारको ताड़ना दी। ताड़ना अज्ञानके बोधका कारण हुई। युवकको लगा—उसकी साधना

अभी अधूरी है। कारण, उसकी अधिष्ठात्रीने भी उसकी रक्षा जो नहीं की। तब; अधूरी साधनाको लेकर उसे अपनेको कलाकार कहनेका साहस नहीं हुआ। उसके आत्म-ज्ञानने उसे समझा दिया। 'कला' और 'कल्पना' समानान्तर गतिशील है। एकको पाकर दूसरीको छोड़ना ही पड़ेगा। 'कला' सत्य है; 'कल्पना' मिथ्या। सत्यकी उपलब्धिके लिये एकान्त-चिन्तनकी आवश्यकता है। बहुमुखी उपासना सत्यसे साक्षात्कार नहीं करा सकती। युवकने मान लिया। वह अभी अपूर्ण मानव ही है—श्रेष्ठ कलाकार नहीं।

युवक चुप हो गया। आश्चर्यचकित सभासद् उत्सुक नयनोंसे महाराजकी गंभीर मुखाकृतकी ओर देखने लगे! कुछ देर बाद शांत सभा-स्थलकी नीरवताको भंग करते हुए महाराजने हँसकर कहा—'पूर्णत्वकी प्राप्तिके लिये स्फूर्तिमान् युवक तुम स्वतन्त्र हो। मैंने तुम्हें नहीं 'कलाकार'को बन्दी बनाया था।'

युवकने अपना तानपूरा उठाया, और चला गया—साधनकी खोजमें।

---

# उसकी कहानी

सूरज डूब चुका था। कालिमा क्रमशः घनी हो रही थी। कब्रि-स्तानसे गुरनेवाली पगडण्डीको पार कर जैसे ही मैं सड़कपर पहुँचा, मेरी दृष्टि, सड़कके किनारे खड़ी लैंडो गाड़ीपरसे उतरनेवाली युवती पर पड़ी।

युवतीकी वेश-भूषा हिन्दुओंकी सी थी! गाड़ीपरसे उतरनेके बाद वह कब्रिस्तानकी ओर चल पड़ी। उसके पीछे-पीछे एक व्यक्ति, जो उसका नौकर था, चला जा रहा था। उसके हाथमें एक थाली थी। जिसपर सफेद रङ्गका एक कपड़ा पड़ा हुआ था। थालीमें कुछ फूल आदि थे।

युवतीको कब्रिस्तानकी ओर बढ़ते देखकर मुझे कुछ कौतूहल सा हुआ। मैं शीघ्रतासे पीछे घूमकर एक पेड़की आड़में चला गया और वहीं रुककर देखने लगा।

कब्रिस्तानमें पहुँचनेके बाद वह एक कब्रके समीप जाकर खड़ी हो गयी। कब्रके सम्मुख नत मस्तक होनेके बाद उसने थाली नौकर के हाथोंसे ले ली और बैठ गयी। पहले उसने एक दीपक जलाकर

कब्रके चबूतरे पर रखा। बाद में फूलोंका एक गजरा कब्रपर चढ़ाया और फिर कुछ फूल चबूतरेपर बिखेर दिये।

मेरे लिए यह घटना सर्वथा नवीन थी। मैं आश्चर्यचकित होकर एकटक युवतीकी ओर देख रहा था! वह लगभग दस मिनट तक चुपचाप वहीं बैठी रही। उसके बाद उठकर खड़ी हो गयी। पुनः हाथ जोड़कर उसने सिर झुकाया और लौटकर गाड़ी पर चली गयी।

गाड़ी मेरी आँखोंसे ओझल हो गयी। मैं कदम बढ़ाता हुआ, उसी कब्रके समीप जाकर खड़ा हो गया।

एक साधारण-सी कब्र थी। उसके आस-पास कहीं कुछ लिखा हुआ नहीं था। मैं किसी प्रकार भी यह नहीं जान सका कि कब्र किसकी है।

घर पहुँचा तो मेरे मस्तिष्कमें यह घटना चक्कर काट रही थी। मैं चुपचाप अपने कमरेमें चला गया और आराम कुर्सीपर लेटनेके बाद यह सोचने लगा कि उस हिन्दू युवती और कब्रमें सोनेवाले मुसलमान युवकके बीच कौन-सा सम्बन्ध रहा होगा। घण्टों इसी उलझनमें रहनेपर भी मैं किसी निर्णयपर न पहुँच सका।

दूसरे दिन मैं पुनः कब्रिस्तानमें जा पहुँचा और छिपकर एक स्थानपर बैठ गया। उस दिन वह युवती पुनः वहाँ आयी और उसी प्रकार दीपक जलाकर तथा माला-फूल चढ़ाकर लौट गयी। उसके चले जानेके बाद मैं भी घर लौट आया। मस्तिष्कमें वही प्रश्न चक्कर काट रहा था। अन्तर केवल इतना ही था कि पहले दिन मैं शान्त था और दूसरे दिन अशान्त! उस दिन भी सारी रात जागता रहा। जैसे-जैसे गुत्थी सुलझाना चाहता था, वैसे-वैसे वह उलझती जाती थी। एक अजीब-सी झुँझलाहट अनुभव कर रहा था मैं।

अन्तमें मुझे एक उपाय सूझा। तीसरे दिन मैं समयसे पूर्व ही कब्रिस्तानमें चला गया और उस कब्रको झाड़-पोंछकर साफ करनेके बाद, इधर-उधरसे कुछ फूल बटोरकर कब्रपर बिखेर दिये। इतना काम करनेके बाद मैं चुपचाप कब्रके समीप बैठ गया और उस युवती की प्रतीक्षा करने लगा।

ठीक समयपर उस युवतीको आते देखकर मेरा दिल जोरोंसे धड़कने लगा। फिर भी मैं उठा नहीं! बैठा रहा चुपचाप।

कब्रके समीप मुझे देखकर युवती ठिठक गयी और मेरी ओर देखने लगी। मैं भी उसे देखकर उठ खड़ा हुआ और नम्रतापूर्वक बोला—'आप···आप कौन हैं?'

युवतीने मधुर स्वरसे उत्तर दिया—'मैं···मैं इस कब्रके नीचे सोनेवाले अभागे युवककी बहन हूँ।···और आप?''

"मैं...।'

'····मैं' कहकर मैं चुप हो गया और सिर झुकाकर सोचने लगा—बहन-भाईका यह सम्बन्ध कैसा!

मुझे चुप देखकर युवती बोली—'आपने बताया नहीं?'

मैंने कहा—'क्या आप मुझे क्षमा करेंगी।'

आश्चर्यचकित युवती बोली—'मैं आपकी बातोंका अर्थ बिलकुल नहीं समझ सकी!'

मैंने कहा—'आप हिन्दू हैं न?'

युवतीने उत्तर दिया—'जी हाँ।'

मैंने सरलतासे पूछा—'फिर इस कब्रके नीचे सोनेवाला अभागा युवक आपका भाई कैसे हो सकता है??'

मेरी बातें सुनकर युवती पांच-सात मिनट तक तो कुछ सोचती रही, फिर बोली—'यह एक लम्बी कहानी है। सम्भवतः इस समय कुछ बता न सकूँगी।'

मुझे उत्तर देनेके बाद युवती कुछ उदास सी हो गयी। उसकी मुख-मुद्रा देखकर पुनः कुछ पूछनेका साहस मुझे नहीं हुआ। मैंने वहांसे हट जाना चाहा, किन्तु न जाने क्यों पैर गड़-से गये! मुझे चुप देखकर उसने कहा,—'आपने कुछ बताया नहीं ?'

युवतीका प्रश्न सुनकर मैंने पिछले दो दिनोंकी सारी बातें उसे सुना दीं।

मेरी बातोंका उसने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप कब्रके समीप बैठ गयी। पहले दीपक जलाया, फिर कब्रपर माला चढ़ायी और फिर फूल।

मैं उसकी प्रत्येक क्रियाको ध्यानपूर्वक देखता रहा। वह उठकर जाने लगी तो बोली,—'वेश्याके निकट न तो कोई मुसलमान होता है, न कोई हिन्दू। पैसा ही उसका धर्म होता है और पैसा ही ईमान! क्या कीजियेगा मेरी कहानी सुनकर।'

इतना कहकर वह आगे बढ़ गयी। कुछ क्षणों तक तो मैं खड़ा रहा, किन्तु शीघ्र आगे बढ़कर मैंने कहा;—'आपका परिचय सुनकर मुझे आश्चर्य अवश्य हुआ है किन्तु... !'

'किन्तु क्या ?' मेरी बातोंको बीचमें ही काटते हुए उसने कहा।

मैंने कहा,—'अगर आपको आपत्ति न हो तो मुझे अपना पता बता दीजिये। न जाने क्यों आपकी कहानी सुननेके लिए मैं बेचैन सा हो गया हूँ।'

हम लोग गाड़ीके समीप पहुँच गये थे। गाड़ीपर बैठते-बैठते उसने एक बार मेरी ओर देखा और फिर अपना पता बता दिया। गाड़ी आगे बढ़ी। मैंने भी अपना रास्ता पकड़ा।

दूसरे दिन मैं उस युवती वेश्याके घर पहुँचा। दस बज चुके थे। जाड़ेकी रात थी! सन्नाटा छाया हुआ था, मुझे देखकर उसने कहा,—'आ गये आप!'

'जी।' कहकर मैं कमरेमें चला गया। उसमें न तो वेश्याओंका सा बनावटीपन था, न विलासिनीकी चपलता ही थी। सच तो यह है कि उसे देखकर कोई भी यह नहीं समझ सकता था कि यह वेश्या है।

उसने कहानी प्रारम्भ की—'लगभग एक महीनेकी बात है। रातका समय था। मैं महफिलसे लौट रही थी। जिस समय मेरी गाड़ी नयी सड़कपर पहुँची, मुझे मालूम हुआ कि शहरमें दंगा हो गया है। दंगेका समाचार सुनकर मुझे काठ मार गया! मैंने कोचवानसे गाड़ी तेज हाँकनेको कहा। मुश्किलसे मेरी गाड़ी बीस-तीस गज आगे बढ़ पायी होगी कि मुसलमानोंकी एक उत्तेजित भीड़ने मेरी गाड़ीको चारों ओरसे घेर लिया। कोचवानने सहमकर गाड़ी तेज की। पलक मारते ही एक हट्टा-कट्टा मुसलमान मेरी गाड़ीमें घुस पड़ा और उसने मेरी कलायी पकड़ ली। एकाएक अपने ऊपर आक्रमण होते देखकर मैं जोरसे चिल्ला पड़ी। मेरी चिल्लाहटका उस मुसलमानपर कोई असर न पड़ा। वह मुझे जबर्दस्ती बाहर घसीट लाया।'

'मेरे बाहर आते ही भीड़ मुझपर टूट पड़ी। कुछ मेरी साड़ी पकड़ कर खींचने लगे। एक मुसलमानने गाड़ी पर चढ़कर कोचवानके पेटमें छुरा भोंक दिया। वह बेचारा चीखकर एक ओर लुढ़क गया और साथ ही मैं भी बेहोश हो गयी।'

'जिस समय आँखें खुली, मैंने अपनेको पलंगपर पड़ा पाया। कुछ देर तक मेरी स्मरण शक्ति लुप्त रही किन्तु धीरे-धीरे होश-हवास दुरुस्त हो गया! चैतन्य होते ही सबसे पहले मेरी दृष्टि अपने कपड़े पर पड़ी। साड़ी कई जगहोंसे फट गयी थी। जम्पर भी दुरुस्त नहीं बचा था। यह सब देखकर मुझे भीड़की याद आ गयी और मैं काँप गयी। कलेजा जोरोंसे उछलने लगा और मैं सोचने

लगी कि मैं हूँ कहाँ ? उसी समय एक युवक मेरे कमरेमें आया। वह लुंगी पहने हुए था और उसके सिर पर पट्टी बँधी हुई थी। उसकी वेश-भूषा देखकर मुझे यह समझते देर न लगी कि मेरे सामने खड़ा युवक मुसलमान है।'

'मेरी आँखें खुली देखकर उसने स्नेह-स्नात कण्ठसे कहा,—'तबियत तो दुरुस्त है बहन !'

'मैंने उसे उत्तर नहीं दिया। यही नहीं अपनी आँखें भी घुमा ली। न जाने क्यों उसकी ओर देखनेका भी साहस नहीं हुआ मुझे'।

'उसने भी मुझसे कुछ नहीं कहा और कमरेके बाहर चला गया !'

'लगभग एक घण्टेके बाद वह घबराया हुआ मेरे कमरेमें आया। कमरेमें घुसकर उसने दरवाजा मजबूतीसे बन्द कर दिया और फिर मेरे पलंगके पास आकर खड़ा हो गया। मैं कुछ समझ सकूँ इससे पूर्व ही वह बोल उठा —'मुसीबत सिर पर है। जैसे भी हो तुम्हें पलङ्ग छोड़ना होगा जरूर !'

'न जाने क्यों उस समय मेरी सारी घबराहट एक दम दूर हो गयी थी। मैंने सरलतासे पूछा,—'बात क्या है ! आप परेशान क्यों हैं ?'

'उसने उत्तर दिया,—'इन्सानियतके दुश्मनोंने मेरे घरको घेर लिया है। वे तुम्हें अपने कब्जेमें करनेके लिए पागल हो रहे हैं। मालूम नहीं कमबख्त क्या करने पर तुले हुए हैं।'

'उसकी बातें सुनकर मैं सहम गयी और उठकर बैठ गयी ! डरते-डरते मैंने कहा,—'अब क्या होगा।'

'होगा क्या,'—उसने लापरवाहीसे उत्तर दिया,—'जबतक, कमाल जिन्दा है वे तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकते।'

'उसकी बातें सुनकर मुझे तसल्ली नहीं हुई। मैंने घबराते हुए कहा,—क्या आप किसी तरह पुलिसके पास खबर नहीं कर सकते ?'

'मेरी बात सुनकर वह ठिठक गया। 'पुलिस !' कहकर उसने दाँतोंसे अपना ओठ दबा लिया और फिर बोला,—'खबर तो भेज चुका हूँ। अभी तक कोई आया नहीं है ! फिर भी तुम्हें परेशान होनेकी जरूरत नहीं है। हाँ, तुम दूसरे कमरेमें जाकर कपड़े बदल लो ! जैसे भी होगा तुम्हें बचाऊँगा अवश्य !'

'वह इतनी सरलतासे बातें कर रहा था मानो वर्षोंसे मुझे जानता हो ! मैं उसकी बात मानकर दूसरे कमरेमें चली गयी। पैर कांप रहे थे। कलेजा धड़क रहा था। आंखोंके सामने नाचने वाली मौत कोई बात सोचने ही नहीं देती थी !'

'इसके बाद क्या क्या हुआ, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ठीक मौके पर पुलिस कमालके मकानपर पहुंच गयी। कमालने मुझे पुलिसके हवाले कर दिया। पुलिसने मुझे मकान तक पहुँचा दिया।'

'अपने घर पहुँच जानेके बाद मैंने राहतकी साँस ली।'

'रातको जिस समय पलँगपर लेटी, एक-एक घटना मेरी आँखों के सामने नाचने लगी और मैं सोचने लगी—यह कमाल कौन है ? यह भी तो मुसलमान ही है न ? मेरी रक्षा करनेमें उसे सफलता कैसे प्राप्त हुई ? वह अपने दिलमें क्या सोचता होगा ! अगर उसे यह मालूम होता कि मैं वेश्या हूँ...?'

'रात आंखोंमें भर गयी ! लाख-लाख प्रयत्न करने पर भी मैं सो नहीं सकी। दूसरे दिन भी दंगे का उत्पात कम नहीं हुआ। धीरे-धीरे दिन बीत गया और रात फिर आ गयी। मैं अपने विचारोंमें ही उलझी रहीं। कमालसे मिलनेके लिए न जाने मैंने कितने उपाय

सोचे किंतु व्यर्थ ! अन्तमें यह सोचाकर कि दंगेमें कुछ नहीं हो सकता, मैं हताश हो जाती थी।'

'एक सप्ताह बाद दङ्गा शान्त हो गया और एक दिन मैं कमालके घर जा पहुँची।

'कमालका कहीं पता नहीं था। उसकी बुड्ढी माँ घरपर थी। मैंने उससे पूछा—'कमाल भाई कहाँ हैं ?'

'मेरा प्रश्न सुनकर कमालकी माँकी आँखें भर आईं। दर्द भरी आवाजमें बोली— 'कमाल अब नहीं रहा बेटी ! कमबख्तोंने उसे कत्ल कर डाला। तुम कौन हो ?'

'कमालकी माँकी बातें सुनकर मेरा कलेजा बैठ गया। दिलमें एक हूक-सी उठी और आँसू बनकर आँखोंकी राहसे बाहर होने लगी। मैं उसकी बुड्ढी माँके पास बैठ गयी और उसे सारा हाल सुना दिया।'

'तू कौन है—एक वेश्या !' 'कमालकी माँका मुख तमतमा उठा। क्रोधने उसकी आँखोंके आँसुओंको सुखा दिया।'

'मेरे बेटेने एक वेश्याके लिए जान दी, एक वेश्याके लिए ! तूने मेरे बेटेकी जान ली।'

'मुझसे वहाँ रुका नहीं गया और मैं तुरत घर चली आयी।'

'दिन बीते ! सप्ताह बीते ! महीने बीते ! कमालके संबन्धमें मुझे कुछ भी पता नहीं लगा। उसकी कब्रका पता पाकर ही मुझे संतोष करना पड़ा। कमालकी याद चौबीस घण्टे मुझे परेशान किये रहती है। सुननेवालोंको मेरी बात कुछ अजीब सी लगेगी अवश्य। किन्तु है बिलकुल स्वाभाविक।'

'यही है मेरी कहानी ! न दर्द है न तड़प ! न किसी तरहकी चाह है न आह ! किन्तु इस घटनाने मेरा जीवन पूरी तरह बदल दिया है। अपने नाममें मुझे चिढ़ हो गयी है। मैं वेश्या हूँ, फिर

भी मैं जी रही हूँ। सोचती हूँ अगर उस बदनसीब भाईकी (जिसने मेरी जान बचाई है) माँके लिए कुछ नहीं कर सकी, तो मेरा जीवन व्यर्थ है। भाई द्वारा कहे गये 'बहन' शब्दकी लाज तो रखनी ही होगी।'

मैं उसके मकानसे नीचे उतरा। घड़ी बारह बजा रही थी। सड़क सूनसान थी। अर्धरात्रिकी नीरवता साँय-साँय कर रही थी। मैं चला जा रहा था और कमालका काल्पनिक चित्र मेरी आँखोंके सामने नाच रहा था।

---

# अकाल

हरित-तृण-संकुलित वनस्थली। देवालयके पूर्वकी ओर

जानेवाली प्रयोज्य पगडंडी। उस पगडंडीके मूक-राही—युवक और

सन्यासी।

'कहाँसे आ रहे हो युवक ?'

'दूर देशका रहनेवाला हूँ देव !'

'परदेशी ?'

'जी हाँ।'

'कहाँ रहते हो ?···जन्मभूमि'......।

'बंगाल से आ रहा हूँ।'

'बंगाल से ! इतनी दूर

'—।'

'जननि-जन्मभूमिकी गोदकी अकथनीय-शान्तिको छोड़कर

इतनी दूर पलायनका कारण ?'

'प्राणका मोह !'

विस्मय-विमुग्ध सन्यासीने स्फरित-नेत्रोंसे देखा युवकको।

'युवक।'

'देव'

'विद्रोही हो ?'

'नहीं।'

'खूनी ?'

'नहीं।'

'तो—'फिर ?'

'दुर्भिक्षकी प्रलयंकरी विनाश-ज्वालासे त्राण पानेके लिये गृह-त्याग किया है प्रभो !'

बंगाल की शस्य-श्यामला धरिणी और दुर्भिक्ष ! दुर्भिक्षका कारण क्या है युवक,—जलप्लावन ?'

'नहीं।'

'अनावृष्टि।'

'नहीं।'

युवक मौन रहा !—

'युवक ?'

'प्रभो !'

'बताया नहीं ?'

'अकालका कारण जलप्लावन नहीं—अनावृष्टि भी नहीं। कारण है देशका दुर्भाग्य और पराधीनताका अभिशाप।'

सुमन सौंदर्यसे पूर्ण लतिका-आलिंगित कुटीरके समीप आकर रुक गया सन्यासी। पूर्वाकाशके लोहित आंचलपर दृष्टि-निक्षेप करते हुए सन्यासीने कहा, ''''परिश्रांत युवक ! रुक सकते हो यहाँ ?'

'रुकना ही होगा। अब तो, शिथिल पगोंपर खड़ा होना सम्भव नहीं प्रतीत पड़ता।'

तटवर्तिनी पुष्पकरणीकी कल-कल ध्वनि तट-प्रांतकी नीरवतामें मृदु कम्पन पैदा कर रही थी।

सन्यासी ने कहा,—'बैठ जाओ युवक।'

× × ×

प्रकृतिके आँगनमें उदय और अस्तका संधिस्थल। प्रकृति-प्रेक्षागारके रंगमंच पर क्रिया-विदग्धा नायिकाका अभिनय करनेके प्रयासमें अभीनिविष्ट 'सन्ध्यादेवी' की कार्य कुशलता देखनेके लिए नक्षत्र-गण इधर-उधरसे झाँक रहे थे।

सन्यासीने कहा,—'लौट आओ युवक।'

युवक बोला,—'लौट जाऊँ! कहाँ?'

'जननि जन्मभूमिकी गोदमें! जहाँ शांति है, सुख है और है जीवनको अनुप्राणित करनेवाली दिव्य ज्योति।'

'भूखकी ज्वालामें झुलसित वृद्धोंकी आह, युवकोंके जर्जर प्राण, अबलाओंकी हृदय-वेधी सिसकारियाँ, अबोध शिशुओंका करुण क्रन्दन-छोटे-बड़े सभीकी अकाल मृत्यु ही जहाँकी शेष सम्पदा हो, वहाँ शांति, सुख-ज्योति केवल छल है, प्रवञ्चना है, विडम्बना है! क्षमाकरो देव! आत्म-घात मुझसे नहीं हो सकता!'

'अकेले हो?'

युवक चुप!

'क्या सोच रहे हो युवक?'

'वे दिन!'

'वे दिन—कैसे थे?'

'नव-प्रभातसे सजल—रात्रिकी तमिस्त्र नीरवतासे गम्भीर!'

'और तब ?'

'आर्य-पुत्र पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण करनेमें व्यस्त थे। धन-धान्यकी अखंड ज्योतिमें जगमग था भरत-खंड! क्रूरता और पैशाचिकता, दुःख और दैन्य, इर्ष्या और द्वेष, राग और विराग जड़ थे—निरीह थे-स्पन्दनहीन। स्नेह और सौजन्यकी सरितामें आकंठ निमग्न थे-आबाल-वृद्ध्, नर और नारी।'

'और आज ?'

'दरिद्रताका भीषण अट्टहास 'मानव' का अस्तित्व मिटा चुका है। आजका मनुष्य, मनुष्य नहीं है-पशु है!'

'कैसे ?'

'कैसे बताऊँ महात्मन्!'

× × ×

निशाकी निरवता भंग हुई...

पूरबमें प्रभात जागा!

पंछी कलरव करने लगे!

कलिकाओंने लुटा दिया यौवन, समीरके चरणों पर! निष्ठुर भाग चला—भागता ही गया!

बैठा था युवक अन्तर्जानु। कुछ सोचता था—तंद्रिल-नेत्रोंकी पलकें झुक-झुक पड़ती थीं।

'सोये नहीं युवक ?'

'नहीं सो सका महात्मन्।'

'जरा सो लो। तब तक मैं नित्यक्रिया से निवृत होकर आ जाता हूँ।'

'...कष्ट हुआ। क्षमा करें। मैं भी जा रहा हूँ।'

'जा रहे हो! कहाँ ?'

'लौट जाऊँगा—जननी जन्मभूमिकी गोदमें !'

विस्मय विमुग्ध सन्यासी बैठ गया। युवक, खड़े होनेका उपक्रम करते समय बैठ जानेका संकेत पाकर पुनः बैठ गया।

'रहस्यमय युवक ! भूल गये, गत रात्रिकी बातें !'

'नहीं भूला हूँ देव !—किन्तु...'

'किन्तु क्या ?'

'समझ गया हूँ, इस विनाशकारी कालमें पत्नीको असहाया-वस्थामें छोड़कर अमार्जनीय पाप किया है मैंने, चलूँ ! अगर सम्भव हुआ तो कुछ प्रायश्चित कर लूँगा।'

'युवक !'

'देव !'

'विवाहित हो ?'

'हाँ।'

'सन्तान...?'

'केवल एक पच-वर्षीया बालिका।'

'उन्हें कहाँ छोड़ आये हो ?'

'जहाँ जाना नहीं चाहता था,...किंतु जहाँ जा रहा हूँ।'

'अर्थात् ?'

'अर्थात् जहाँसे, अपने प्राणका मोह लेकर, अकेले ही भाग आया हूँ।'

'हाँ अकाल पड़ा है ?'

'जी, हाँ !'

'जहाँ तुम्हारे ऐसे युवक, उदरपूर्तिमें असफल हैं, वहाँ एक अबलाका क्या हाल होगा ?'

'प्रभो, यह ता कुछ भी नहीं। स्मरण होगा, मैंने कहा था न, आज मनुष्य, मनुष्य नहीं—पशु है। पिता, पुत्रके कफनमें क्षुधाका
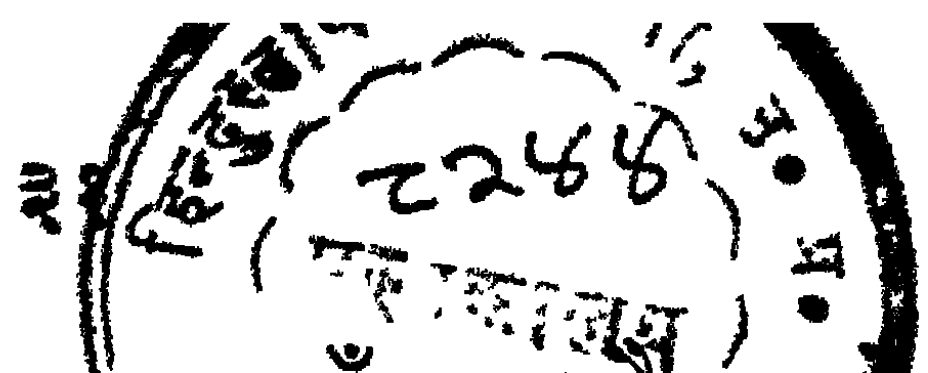
आधार ढूँढ़ रहा है। पुत्रके जीवित रहते हुए भी, पिताकी लाश गृद्धों और श्रृगालोंका आहार बन रही है। ममताके साकार-स्वरूप-के अस्तित्वको सिद्ध करनेवाला मातृ-स्नेह, अपने ही हाथोंसे अपनी सन्तानोंको सरे बाजार बेंच रहा है। कुल-ललनाओंका सिंदूर मुट्ठी-भर अन्नकी कीमतपर बिक रहा है। श्रीमानोंके उच्छिष्ट भोजनपर बाजकी भाँति टूटनेवाले भूखे कुत्ते और उच्छिष्ट भोजनसे अपनी क्षुधा-ज्वाला शान्त करनेके प्रयासमें, नर-पशुका संग्राम आये दिनकी घटना हो गयी है। ऐसा है हमारा देश !—देखेंगे आप ?'

सन्यासीके गम्भीर स्वरकी ध्वनि, युवकके कर्ण-रन्ध्रोंसे जा टकरायी—'हाँ, अवश्य चलूँगा। तुम्हारे ही साथ !'

—उस पथपर—

पथके दोनों ओर खड़ी ऊँची अट्टालिकाएँ आकाश चूमना चाहती थीं। बाजारोंमें काफी चहल-पहल थी। मोटर, ट्राम, गाड़ी-घोड़ा सभी कुछ थे। चमक-दमक देखकर सन्यासीको शंका हुई—कहीं युवकका मस्तिष्क तो विकृत नहीं हो गया ! और तब दृष्टि पड़ी पथके वामपार्श्वपर एकत्र भीड़पर। मृत-माताके सूखे स्तनोंसे चिपटा पड़ा था अबोध शिशु।

कुछ और आगे, उस ओर—माँ, क्षुधा-विताड़ित दो सन्तानों-की मृत्युका व्यग्रतासे इन्तजार कर रही थी।

लोग दौड़े जा रहे थे पश्चिमकी ओर। एकको रोककर सन्यासी ने पूछा—'क्या है भाई !'

सन्यासीको नीचेसे ऊपर तक देखकर अपरिचित बोला—'स्वयं जाकर देख लीजिए।'

क्षणभर बाद ही पता लगा—एक माँ अपने शिशुको बेंच रही है। खरीदार कोई नहीं है।

सन्यासी घबड़ा गया। उसकी समझमें नहीं आ रहा था, य
कैसा मायाजाल है। एक ओर वैभव और सम्पदा नजर आ रह
थी, दूसरी ओर 'अब और तब!' सन्यासीने युवकका हाथ पक
कर पूछा,—'अब और कितनी दूर।'

घबड़ा गये महाराज! आँखें खोलकर देख लीजिये इस राज
नीतिक-अकालको। अन्नका अभाव नहीं है—किंतु लोग मर रहे हैं
मुट्ठी भर अन्नके लिए।

सन्यासी चुप! सोच रहा था—तपो भूमि यहाँ है, या वहाँ?

---

# कर्तव्यकी वेदीपर

जब होटलके मैनेजरने अविनाशसे साफ-साफ कह दिया कि 'अब मैं आपको इस होटलमें स्थान नहीं दे सकता', तब उसे कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ लेकिन उसने उसे व्यक्त न होने दिया और मैनेजरसे पूछा—'क्या मेरे कारण आपकी कुछ हानि हुई है ?'

'हाँ' कहकर मैनेजरने सिगरेटका एक कश खींचा और आँखें बन्दकर न जाने क्या सोचने लगा। कुछ देरतक चुप रहनेके बाद उसने कुछ कहना चाहा किन्तु ठीक उसी समय अविनाश बोल उठा—'क्या मैं वह हानि जान सकता हूँ ?'

'नहीं महाशय', कहकर होटलका मैनेजर कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया और कमरेमें टहलने लगा। फिर रुककर आप ही बोल उठा—'बात यह है कि डिप्टी पुलिस सुपरिन्टेंडेंट मि० वजिरानीको आपसे कुछ शिकायत है। पिछली बार आपके जानेके बाद उन्होंने आपके सम्बन्धमें, मुझसे कई प्रश्न पूछे थे।'

वजिरानीका नाम सुनते ही अविनाशके कान खड़े हो गये
दूसरा अवसर होता तो सम्भवतः वह एक क्षणके लिए भी होटल
नहीं ठहरता, लेकिन इस समय वह किसी भी दशामें एक घण्टेक
समय वहां व्यतीत करना चाहता था। कार्यक्रमके अनुसार रू
ठीक दो बजे वहां पहुँचनेवाला था

अविनाशको चुप देखकर होटलका मैनेजर बोला—'क्या सो
रहे हैं आप?'

'कुछ नहीं, यही सोच रहा था कि मेरे कारण आपके होटलक
'क्रेडिट' पर धक्का पहुंचा है।'

'जी हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है।'

'अच्छा एक बात तो बताइये। आप पुलिससे इतन
डरते क्यों हैं?'

'मि० अविनाश,'—कुछ कड़े स्वरमें मैनेजरने कहा, 'आपक
इन बातोंका मतलब क्या है?'

न जाने क्यों अविनाशको हँसी आ गयी। उसका हँसना थ
कि मैनेजर तुरन्त आग बबूला हो गया। उसने क्रुद्ध होकर फौर
होटल छोड़ देनेके लिए कहा।

अविनाशने लापरवाहीसे उत्तर दिया—'इस समय तो शायद
होटल न छोड़ सकूँगा।'

'इसका अर्थ?'

'यही कि इस समय मैं होटलमें ही रहूँगा।'

मैनेजरने कहा—'ज्ञात होता है कि आपका मस्तिष्क कु
खराब है।'

'यही समझ लीजिये।'

'लेकिन मैं ऐसा न समझनेके लिए बाध्य हूँ। यदि आप स्व

न जायँगे, तो मैं बलपूर्वक आपको होटल छोड़नेके लिए बाध्य करूँगा।'

अविनाश कुछ कहना ही चाहता था कि उसके कानोंमें मोटर रुकनेकी आवाज पड़ी। वह फौरन कमरेके दरवाजेसे बाहर निकल गया। दरवाजेके बाहर दृष्टि पड़ते ही उसे मि० वजिरानी नजर आये। अविनाशने एक क्षण भी नष्ट नहीं किया और सीढ़ीका रास्ता पकड़कर ऊपरकी मंजिलमें जा पहुँचा।

मैनेजरके कमरेमें पहुँचते ही वजिरानीने कहा—'अविनाश कहाँ है?'

मैनेजर कुछ उत्तर दे, इसके पूर्व ही ऊपरकी मंजिलमें कुछ हल्ला-गुल्ला होता सुनायी पड़ा। वजिरानीने कहा—'यह शोर-गुल कैसा है?'

'कुछ मालूम नहीं'—कहकर मैनेजर ज्यों ही अपनी जगह छोड़कर आगे बढ़ा, त्योंही पूरा होटल रिवालवरसे निकली गोलीके फलस्वरूप होनेवाली धाँय-धाँयकी आवाज़से गूँज उठा।

सारे होटलमें कुहराम मच गया। मि० वजिरानी फौरन ही सीढ़ीकी ओर बढ़े। वह कुछ कदम ही चल पाये होंगे कि एक सफेदपोश आदमीने उनका रास्ता रोक लिया और हाँफते-हाँफते कहा—'वह भाग गया हुजूर।'

मि० वजिरानीने कड़ककर कहा—'कौन भाग गया?'

'अविनाश, हुजूर?'

'अविनाश...!'

मि० वजिरानीने आगे कुछ नहीं कहा और झपटकर दरवाजेकी ओर चले।

× × ×

अविनाश ज्यों ऊपर पहुँचा, त्यों उसे ऐसा प्रतीत हु
मानो कोई उसका पीछा कर रहा है। उसने दृष्टि घुमाकर चा
ओर देखा। कुछ ही दूरीपर सफेद वर्दीमें खड़ा गुप्तचर उसकी ते
निगाहोंसे छिप न सका। अविनाशका माथा ठनका। एक क्षण भ
गँवाना उसने मूर्खता समझी। फिर क्या था। झट उसने जेबमें रख
रिवाल्वर बाहर निकाली और हवामें दनादन दो फायर कर ही
दिये। रिवाल्वरसे गोली क्या छूटी—तूफान-सा मच गया वहाँ
अविनाश मौका देखकर होटलकी पिछली दीवारकी ओर भा
और बरामदेमेंसे गलीमें कूदकर नौ-दो ग्यारह हो गया।

सुरक्षित स्थानमें पहुँचकर अविनाश रुक गया। हाँफते-हाँफ
उसने कलायीमें बँधी घड़ीकी ओर देखा। दो बजनेमें केवल पन्द्र
मिनट बाकी थे।

'ठीक पन्द्रह मिनट बाद रूप होटलमें पहुँच जायगा। यदि उस
वेषभूषा बदलनेकी बुद्धिमानी न की होगी, तो वजिरानी उसे पह
चान लेगा। उसके बाद···।'

भविष्यके सम्बन्धमें उठी इस कल्पनाके कारण तत्काल ह
उसकी थकावट दूर हो गयी। मस्तिष्कमें तेजीसे एक साथ दूसर
विचार उठने लगा—'यदि रूप गिरफ्तार हो गया तो गजब ह
जायगा! 'दल'के महत्वपूर्ण कागज-पत्र उसीके पास हैं। आन्दो
लनके अगले कार्यक्रमकी रूपरेखा उन्हीं कागजोंमें लिखी है
न···न···उसे किसी भी हालतमें गिरफ्तार नहीं होने देना होगा।

बस इतना सोचना था कि अविनाश फौरन पीछे लौट पड़ा।

× × ×

ठीक दो बजे रूप होटलके समीप पहुँचा। वहाँकी स्थिति
देखकर उसका माथा ठनका। होटल चारो ओर पुलिससे घिरा था

रूप ठिठककर खड़ा हो गया। उसने सोचा—'तो क्या पुलिसको अविनाशके आगमनका पता लग गया है? अविनाश कहीं घिर तो नहीं गया? अबतक वह होटलमें अवश्य पहुँच गया होगा।'

रूप इस बातसे भलीभाँति परिचित था कि अविनाश अत्यन्त वीर, साहसी, दृढ़चित्त और मेधावी युवक है। वास्तविक बात तो यह थी कि उसकी कार्य-क्षमताके बलपर ही गुप्त स्वातन्त्र्य आन्दोलन जीवित था। शासन-सत्ता नयेसे नये दमनके प्रकारका आविष्कार करके भी युवकोंका साहस तोड़ न सकी थी। रूपने अविलम्ब ही अविनाशके संबंधमें वस्तुस्थितिका पता लगानेका निर्णय किया। साथ ही उसने यह भी निश्चय किया कि यदि अविनाश गिरफ्तार होगया होगा, तो वह उसे अपनी जानपर खेलकर भी मुक्त करनेका प्रयास करेगा। उसने सोचा 'यदि अविनाश स्वतन्त्र रहा, तो सैकड़ों नये रूप पैदा हो जायँगे, किन्तु यदि अविनाश गिरफ्तार हो गया तो देशके करोड़ों नर-नारियोंका रक्त चूस-चूसकर अपनी प्यास बुझानेवाले इन विदेशी पिशाचोंका सामना कौन करेगा?'

रूपने वेष-भूषा तो बदल ही रखी थी। एक काम उसे करना था और वह था अपने पास रखे कागज पत्रोंको हटाना, उन्हें किसी सुरक्षित स्थानमें रखना उस समय सम्भव न था। फलतः उन्हें उसने जलाकर राख कर देनेका निर्णय किया। मौतको हथेलीपर रखकर घूमनेवाले रूपके लिए यह कोई कठिन कार्य न था। वह फौरन एक निर्जन गलीमें चला गया। वहीं अवसर देखकर उसने सारे कागज-पत्र जला डाले और होटलकी ओर बढ़ा!'

होटलके फाटकके पास पहुँचते ही रूपका सामना मि० वजिरानीसे हुआ। यद्यपि रूपने वेश बदल रखा था फिर भी वजिरानीकी तेज आँखोंने उसे पहचान ही लिया। परिणाम यह हुआ कि रूपके

समीप पहुँचते ही वजिरानीने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—'मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।'

कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए रूपने कहा—'मुझसे!'

हाँ, आपसे।

'कहिये?'

'आपका नाम?'

'सुरेश।'

'आप कहाँसे आ रहे हैं?'

'लखनऊसे।'

'कब आये हैं?'

'कल।'

'हूँ...' कहकर वजिरानीने चुप्पी साध ली। रूपने भी प्रतिक्षा नहीं की और कदम आगे बढ़ाया। वह कुछ ही आगे बढ़ सका होगा कि वजिरानीके संकेतपर उसे कुछ सशस्त्र सिपाहियोंने घेर लिया। वजिरानीने स्वयं आगे बढ़कर उसकी तलाशी ली। एक छः चौम्बरकी पिस्तौलके सिवा उसके पास और कुछ नहीं मिला!

× × ×

अविनाश ठीक उसी समय होटलके समीप पहुंचा जिस समय रूपकी तलाशी ली जा रही थी। होटलके पास बहुत आदमी एकत्र हो चुके थे। खासी भीड़ लगी थी। अविनाशने सोचा,—'आखिर रूप गिरफ्तार हो ही गया!'

बस इससे आगे वह कुछ नहीं सोच सका। उसने फौरन ही उस स्थानसे हट जाना उचित समझा। वह एक क्षणके लिए भी यह नहीं भूला था कि बहुतसे सरकारी गुप्तचर साधारण भेषमें चारों ओर चक्कर काट रहे होंगे।

अविनाश फौरन एक ओर बढ़ चला। अनेक विचार उसके मस्तिष्कमें चक्कर काट रहे थे। वह स्थिर नहीं कर पा रहा था कि मुझे क्या करना चाहिये।

× × ×

दूसरे दिन अविनाशको समाचार-पत्रों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि रूप गिरफ्तार हो गया है। उधर रूपका हाल कुछ और ही था। अपने साथ अन्य किसीको गिरफ्तार न हुआ देखकर उसे यह विश्वास हो गया कि अविनाश किसी तरह पुलिसके फंदेसे निकल गया है। इस बातसे उसे कुछ संतोष हुआ।

अविनाश चुप बैठनेवाला नहीं था। उसने फौरन अपने एक-दो विश्वस्त साथियोंसे बातचीत की और आगेका कार्यक्रम निर्धारित करनेका निर्णय किया।

एक सँकरा-सा गली थी। उस गलीमें एक टूटा फूटा मकान था। रातका समय था। एक हल्की बत्ती टिमटिमा रही थी। एक कमरेमें अविनाश कुछ साथियोंके साथ बैठा परामर्श कर रहा था। इसी समय किसीके आनेकी आहट लगी। अविनाशने आँखें घुमाकर दरवाजेकी ओर देखा और साथ ही उसका हाथ जेबपर चला गया।

दूसरे ही क्षण मंगलने कमरे में प्रवेश लिया। वह कुछ घबराया हुआ था। एक ओर बैठकर अविनाशकी ओर देखते हुए बोला—'तुम अविलम्ब अपने घर जाओ अविनाश। तुम्हारी माँकी अवस्था ठीक नहीं। आज पुलिसने तुम्हारे घरकी तलाशी ली थी। उसने तुम्हारे छोटे भाईको गिरफ्तार कर लिया है।'

मंगलकी बातें सुनकर भी अविनाश कुछ विचलित नहीं हुआ। उसने साफ-साफ कह दिया—'इस समय मैं किसी भी हालतमें घर नहीं जा सकता। माँकी देख-भाल तुम्हें ही करनी होगी मंगल!'

मंगलने कुछ गम्भीर होकर कहा—'माँकी अवस्था अत्यधिक गम्भीर है शायद अब वह....।'

'बच न सकेगी।'—बीचमें ही बोलते हुए अविनाशने कहा—'यही न कहना चाहते हो तुम ? भाग्यकी रेखा कौन मिटा सकता है मंगल ! किस-किसका संकट देखूँ। जिसने मुझे पैदा किया है उसका, या उसका जिसने न केवल मुझे, तुम्हें वरन् भारतके करोड़ों नर-नारियोंको जन्म दिया है। मैं अवश्य अपने घर जाता किन्तु जाऊँगा नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ वहाँ जानेके बाद मैं पुलिसके फंदेमें अवश्य फँस जाऊँगा। यह मुझे स्वीकार नहीं है। मैंने जननी जन्म-भूमिको बेड़ियाँ पहनानेवालोंके विरुद्ध जीवन-पर्यन्त युद्ध करते रहनेका व्रत लिया है। युद्धका आह्वान करनेके बाद सतर्क होकर कार्य न करनेका अर्थ अपने हाथसे उस लक्ष्यका गला घोंट देना है जिसके लिए युद्धका आवाहन किया गया। इसका सीधा-सा अर्थ अपने प्रति, अपनी आत्माके प्रति, अपने संकल्पोंके प्रति, अपने धर्मके प्रति और अपनी मातृभूमिके प्रति विश्वासघात करना है। सैनिक मोहके बन्धनमें फँसकर सैनिक नहीं रह सकता और जो सैनिक नहीं रह सकता, वह दासताका बन्धन कैसे काट सकता है मंगल !'

अविनाश चुप हो गया। उसके साथी भी चुप ही रहे। अविनासने ही पुनः शान्ति भंगकी—'तुम जाओ मंगल। यदि आवश्यकता हुई तो तुम्हें बुला लूँगा !'

मंगलके चले जानेके बाद अपने साथियोंको सम्बोधित करते हुए अविनाशने कहा—'जिस प्रकार भी हो हमें रूपको कारागृहसे मुक्त करना ही होगा।'

× × ×

अविनाश अकेला था। आकाश बादलोंसे घिरा था। कुछ बूँदाबाँदी भी हो रही थी। मंगलके सम्मुख कहनेको तो वह बहुत कुछ कह गया था किन्तु सच यह है कि उसी क्षणसे उसका हृदय माँसे मिलनेके लिए छटपटा रहा था। बचपनकी अनेक बातें उसकी आँखोंके सामने नाच रहीं थी।—

—'बचपनमें ही मेरे पिता मुझे छोड़कर दूसरी दुनियाँमें चले गये थे। घरकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। अपने तनका एक एक आभूषण बेचकर माँने मुझे पाला। वह हमेशा यही सोचती रही कि अविनाश बड़ा होकर मेरी सारी विपत्तियोंको अनायास ही दूरकर देगा। उसने अपनी लुटी हुई दुनियको मेरा सहारा लेकर बचानेकी चेष्टा की। यही कारण था कि यदि कभी मेरे सिरमें हलका सा दर्द भी होने लगता, तो वह उसे दूर करनेके लिए जमीन आसमान एक कर देती थी।'

'और—

'मैं······मैंने माँको कौन-सा सुख दिया। हमेशा उसके दुखका ही कारण बना रहा। क्या करूँ? जब माँकी याद आती है, तब मातृभूमिकी बेड़ियाँ भी आँखोंके सामने नाचने लगती हैं! जब उसकी बीमारीकी हालत पर विचार करने लगता हूँ, तब भारतकी सहस्रों देवियोंके विदेशी-शासन-जनित असह्य कष्ट याद आ जाते हैं। जब माँके प्रति अपने कर्तव्यपर विचार करता हूँ, तब देशके प्रति कर्तव्य की भावना हृदय थाम लेती है।·······ओह······यह व्यामोह! मुझे इससे बचना ही होगा। मुझे अपने व्रतका निर्वाह करना ही होगा। यदि मैं पथभ्रष्ट हुआ, तो मेरे सहयोगियोंका साहस भंग हो सकता है। न··न··मैं ऐसा कभी न होने दूंगा?··· मुझे क्षमा करना, माँ! तुम्हारा पुत्र कर्तव्यसे विवश है वह पथ-

भ्रष्ट नहीं। तुम्हारे प्रति अपने कर्तव्यको भी वह नहीं भूला है। वह······।'

इसके आगे अविनाश कुछ सोच न सका। अकस्मात् अनेक अशुभ विचारोंने उसे घेर लिया। उसे अपना मस्तिष्क विकृत-सा होता प्रतीत हुआ। यह बात उसके लिए सर्वथा नवीन थी। उसने कभी किसी बातको, किसी घड़ीको, किसी स्थान और किसी कार्यको भी अशुभ नहीं समझा था। कुछ परेशान होकर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। लेकिन इससे भी उसकी परेशानी दूर नहीं हुई। असहायावस्थामें पड़ी मरणासन्न माँका चित्र उसकी आँखोंके सामने आ गया। घबराकर अविनाश घरसे बाहर निकल गया।

उसे नहीं मालूम था—वह कहां जा रहा है, किन्तु देखनेवाला कोई भी परिचित यह कह सकता था कि उसके पैर अपने घरकी दिशाकी ओर ही बढ़ रहे थे। उसे यह भी नहीं मालूम था कि मेरे आस-पास गुजरनेवाले कौन हैं, किन्तु जाननेवाले जानते थे कि वह शीघ्र ही गुप्तचरोंकी निगाहके नीचे आ जायगा।·······वह तो बस चला जा रहा था, निरुद्देश्य-सा, निर्लक्ष्य-सा !

× × ×

मंगल यथाशक्ति अविनाशकी माँकी सेवा सुश्रुषा कररहा था, फिर भी उसकी दशा चिन्ताजनक ही बनी रही। डाक्टरोंने भी अपनी पराजय व्यक्त कर दी। मंगलकी आँखोंमें आंसू भरे रहते। प्रत्येक घड़ी अविनाशकी माँ, अपने पुत्रका ही नाम रटा करती थी। अन्तमें मंगलसे न रहा गया। उसने अविनाशको बुलानेका निश्चय किया और घरसे निकल पड़ा। अभी वह मुश्किलसे दस-बारह कदम ही आगे बढ़ पाया होगा कि कुछ व्यक्तियोंने उसे चारों

ओरसे घेर लिया। मंगलको यह समझते देर न लगी कि पुलिस विभागके आदमी हैं और सम्भवतः मैं गिरफ्तार कर लिया गया हूँ। फिर भी उसने अपनी आशंका व्यक्त न की और उनमेंसे एक आदमीसे पूछा—'आप लोग क्या चाहते हैं ?'

किसीने उत्तर दिया—'उत्तर आपको थानेपर दिया जायगा। अभी आपको वहीं चलना होगा।'

मगल वीर भी था और भावुक भी। उसे उपर्युक्त उत्तर जहर सा लगा। क्रोधसे उसका मुख तमतमा उठा—'थानेपर ले जानेवाले आप कौन हैं ? मरणासन्न अवस्थामें माँको निस्सहाय छोड़कर मैं आपके साथ थानेपर चला जाऊँगा, इसे आपने मान कैसे लिया! अच्छा होगा कि आप मेरा रास्ता छोड़ दें।'

इस समय तक उसके चारो ओर काफी आदमी एकत्र हो चुके थे। मगलने उत्तरकी प्रतीक्षा नहीं की और घेरा तोड़कर आगे बढ़नेका प्रयास किया। उसे गिरफ्तार करनेवाले भला चुप कैसे रहते। एक खासा हंगामा मच गया। राह चलनेवालोंने भी उसमें योग दिया। फिर क्या था। दूर खड़ा पुलिसका एक दस्ता तो मानो इस घटनाकी बाट ही जोह रहा था। एक सबइन्सपेक्टरके मातहत पुलिसका दस्ता आगे बढ़ा। भीड़ तितर-बितर करनेके लिए पुलिसने लाठी चलायी। उत्तेजित जन-समूहने लाठीका जवाब पत्थरसे दिया। बात बढ़ गयी। पुलिसको मौका मिला और गोली चल गयी !

× × ×

अकस्मात् गोलीकी आवाज सुनकर अविनाशकी तंद्रा भंग हुई। उसे ज्ञात हुआ कि मैं अपने घरके समीप पहुँच चुका हूँ। उसे अपनी लापरवाहीपर कुछ क्रोध आया किन्तु दूसरे ही क्षण वह सोचने लगा—'गोली क्यों चली ? आज तो कोई जलूस भी

नहीं निकलनेवाला था। कहीं सत्याग्रह भी नहीं हो रहा है। आखिर बात क्या है ?'

जिधरसे लोग भाग भागकर आ रहे थे उस ओर बढ़नेके लिए अविनाशने कदम उठाया ही था कि उसकी बुद्धिने उसे झकझोर दिया। वह उलटे पैरों पीछे लौटा। पैदल घूमना उसे संकटप्रद प्रतीत हुआ। उसने फौरन ही पाससे गुजरनेवाली एक टैक्सी रोकी और उसपर सवार होकर वहाँसे चला गया।

जिस समय अविनाशकी टैक्सी शहरसे दूर एक देहातकी सीमा पर रुकी, उस समय पांच बज चुके थे। उसने टैक्सी वहीं छोड़ दी और पैदल ही आगे बढ़ा। रह-रहकर उसके मस्तिष्कमें एक ही बात चक्कर काट रही थी—गोली क्यों चली ?

काफी प्रयत्न करनेके बाद भी अविनाश किसी निर्णयपर न पहुँच सका। अन्तमें उसने दूसरे दिनके लिए इस प्रश्नको टाल दिया। रात भर इधर-उधरकी ठोकरें खाता रहा। पिछले पहर कुछ झपकी सी मालूम हुई तो नदीके किनारे जन-शून्य स्थानमें जाकर सो रहा।

दूसरे दिन अविनाश शहर लौटा। तत्काल ही पूरी घटना उसे ज्ञात हो गयी। उसे यह भी पता चल गया कि मंगल गिरफ्तार कर लिया गया है। अविनाशका सारा साहस और धैर्य काफूर हो गया। दिल बैठने लगा। रह-रहकर माँकी याद सताने लगी। किन्तु······किन्तु पुनः उसने अपनेको बेबस पाया।— 'आज तो मैं किसी भी दशामें माँके पास नहीं पहुँच सकता। रूप-को कारा-मुक्त करनेकी योजना आज ही तो कार्यान्वित करनी है।'

बस; अविनाशने फिर किसी विचारको मस्तिष्कमें जमने नहीं दिया। वह फौरन उस स्थानकी ओर चल पड़ा, जहाँ सहयोगियोंसे मिलना निश्चित किया गया था।

× × ×

भादोंकी अँधेरी रात ही कलेजा दहला देनेके लिए काफी थी। फिर बारह बज चुका था। आस-पास न तो कोई व्यक्ति था, न उसका निवास स्थान। भीषण सन्नाटा छाया हुआ था। जेलके अन्दर पहरा देनेवालोंकी आवाज कभी कभी उस सन्नाटेको भंग कर देती थी। अविनाश स्थिर चित्तसे अपने सहयोगियोंको निर्देश दे रहा था।

कुछ देर तक इधर-उधर घूमने और बातचीत करनेके बाद अविनाशने अपने तीन साथियोंसे कहा—'जिस समय तुम्हें सीटी-की आवाज सुनायी दे, उस समय यह समझना होगा कि हमारे साथी चहार दीवारी पार कर चुके हैं। यदि उन्हें सफलता प्राप्त हुई और वे चहार दीवारीपर पहरा देनेवाले नम्बरदार और जमादार-पर काबू पा सके तो हमें उनका संकेत मिल जायगा। यदि वे सफल न हुए तो मैं दूसरी बार सीटी बजाऊँगा। उस समय तुम लोगोंको जेलके फाटकके समीप पहुँचकर पहरेदारोंपर अपनी-अपनी रिवाल्वरसे आक्रमण करना होगा। ऐसी अवस्थामें भी किसी न किसी प्रकार बाहरसे जेलमें घुसनेवाली 'गारद' को तुम्हें अपनी ओर आकृष्ट करना होगा। इसके बाद सब अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार कार्य करेंगे।'

अविनाशने निर्देश देना बंद कर दिया। सहयोगी फौरन अपने काममें जुट गये।

× × ×

रूपको देखते ही अविनाश उलझ पड़ा और चिल्लाया—'रूप!'

अंधकारके कारण रूप अविनाशको देख नहीं सका था। ध्वनि-का सहारा पाकर उसने उस ओर देखा जिस ओर अविनाश खड़ा

था। इसी समय धाँय-धाँयकी आवाज हुई। रूप फौरन लेट गया। अविनाश झुक गया। बन्दूककी गोली उसके पैरमें लगी।

रूप रेंगता-रेंगता अविनाशके पास पहुँचा। अविनाश कराह रहा था। रूपको यह समझते देर न लगी कि अविनाश आहत हो चुका है। उसने दबे स्वरसे कहा—'मुझे अपनी रिवाल्वर दे दो अविनाश।'

रूपकी ओर रिवाल्वर बढ़ाते हुए अविनाशने कहा—'तुम फौरन भाग जाओ रूप। मैं तुम्हारा साथ न दे सकूँगा। गोली पैरमें ही लगी है।'

रूपने अविनाशकी बातोंका उत्तर नहीं दिया।

रिवाल्वर हाथमें लेनेके बाद उसने आहट ली। उसे शीघ्र ही यह ज्ञात हो गया कि कुछ लोग मेरी ओर बढ़ रहे हैं। स्थिति साफ थी। वहाँ रुकना स्वयं मृत्युको निमन्त्रण देना था। अविनाशको छोड़कर हटना उसे स्वीकार नहीं था। अन्तमें उसने शत्रुओंसे लोहा लेनेकी ही ठानी। वह लुढ़ककर एक पेड़के तनेकी आड़में हो गया। किसी प्रकार अविनाश भी वहाँ पहुँच गया।

दोनोंको आशा थी कि अंधकार उनकी सहायता करेगा किन्तु उनकी आशा पूर्ण न हुई। शीघ्र ही इधर-उधर टार्चकी रोशनी फैलती दिखायी दी। अविनाश लगभग निराश-सा हो गया। उसने विह्वल होकर कहा—'तुम भाग जाओ रूप। मुझे मेरे भाग्य-पर छोड़ दो।'

'नहीं, यह नहीं हो सकता।' रूपने दृढ़ता से उत्तर दिया।

'नहीं रूप, तुम्हें मेरा आग्रह स्वीकार करना ही होगा। जाओ रूप···मेरी माँ मृत्यु-शैय्यापर पड़ी है। उसकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं है। सम्भव है वह अबतक···।'

'यह तुम क्या कह रहे हो अविनाश। मां मृत्यु-शैय्यापर और तुम यहाँ !'

अविनाश कुछ कहना ही चाहता था कि सहसा फाटककी ओर-से धाँय-धाँय-धाँय-धाँयकी आवाज सुनकर वह रुक गया। शीघ्र ही अविनाश और रूपने देखा कि उनकी ओर बढ़नेवाले ठिठककर खड़े हो गये हैं। उनके टार्च भी विपरीत दिशाकी ओर घूम गये थे। पुनः धाँय-धांयकी आवाज हुई। स्थिति समझनेमें अविनाशने भूल नहीं की। यद्यपि वह संज्ञाशून्य-सा हो रहा था फिर भी उसकी बुद्धिने जवाब नहीं दिया था। उसे अब कुछ आशा हो गयी थी। उसने रूपसे कहा—'अच्छा अवसर है रूप, फौरन निकल जाओ। ज्ञात होता है कि हमारे साथियोंने दुश्मनोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है।'

रूपने कोई उत्तर नहीं दिया। अविनाशके मना करते रहनेपर भी उसने उसे अपने कंधेपर लादा और आगे बढ़ा।

जिस ओर रूप जा रहा था, उस ओर कुछ और आगे बढ़नेमें शायद न तो रूप जीवित रहता, न अविनाश।

सड़कपर उनकी मोटरके पीछे ही पुलिस बन्दूक लिये शिकारकी बाट जोह रही थी। हमेशासे आगत संकटका अनुमान लगानेवाला अविनाश इस बार भी न चूका। उसने फौरन रूपको इशारेसे समझाया। आगे दूसरा मार्ग नहीं था। पीछे लौटना सम्भव नहीं था। बगलमें आगे जाकर रास्ता बंद हो जाता था। एक ओर खाई-थी जो लगभग तीस फुट गहरी होगी। गनीमत यही थी कि नीचे नदीका किनारा था और वहाँकी भूमि न तो कँकरीली थी, न पथरीली। वहाँ बालू बिछा हुआ था। दूसरा अवसर होता, तो रूप नीचे कूद सकता था। किन्तु इस समय तो उसके सामने घायल अविनाशकी जीवन-रक्षाका प्रश्न था।

अविनाश रूपके मनकी बात समझ गया। वह यह भी समझ गया कि रूप उसे छोड़कर न जायगा। यदि रूपके पासकी रिवाल्वर उसके पास होती, तो सम्भवतः वह आत्मघात कर लेता और इस प्रकार रूपको भागनेके लिए अवसर प्रदान करता। किन्तु यह सम्भव न था। अन्तमें उसने कहा—'रूप यह सोचने-विचारनेका अवसर नहीं है। फौरन मेरे पैरमें कसकर एक पट्टी बाँध दो। हम दोनोंको नीचे कूदना ही होगा।'

रूप अविनाशका साहस देखकर दंग रह गया।

× × ×

अविनाशने रूपको बचाया, अपने सम्मानको बचाया, और अपने व्रतको बचाया किन्तु वह माँकी रक्षा न कर सका। दूसरे दिन जिस समय उसने रूपसे सुना कि उसकी माँ जिस समय अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थी, उस समय कोई भी परिचित-अपरिचित उसके समीप नहीं था—उसकी आँखोंमें आँसुओंकी बाढ़ सी आ गयी। जिस ममताका वह अबतक कर्तव्यकी वेदीपर बलिदान करता आ रहा था, आज कर्तव्यको उसके सम्मुख पराजित-सा होना पड़ा। उसने भरे हुए कण्ठ-स्वरमें कहा—'मैं कितना अभागा हूँ रूप!'

रूप चुप! कहता भी क्या! उसे न जाने क्यों रह-रहकर अपने पर घृणा हो रही थी।—'कितना महान् है अविनाश!'

रूपकी तन्द्रा भंग करते हुए अविनाश बोला—'उसे लोग स्मशान कब ले गये हैं?'

'यही दो घण्टे हुए होंगे।'

'दो घण्टे?'

'हाँ।'

'तब तो मैं मांका अन्तिम दर्शन कर सकूँगा रूप । अभी लोग वहाँ पहुँचे ही होंगे ।'

रूपकी अजीब स्थिति थी। वह अविनाशको जाने भी नहीं देना चाहता था और रोक सकना भी उसके लिए मुश्किल हो रहा था। अविनाशके पैरका घाव ताजा था। शहरकी हालत ठीक न थी। सैकड़ों गुप्तचर चारोंओर फैले हुए थे। उसकी और अविनाशकी खोजमें पुलिस विभाग जमीन आसमान एक कर रहा था। ऐसी हालतमें बाहर निकलना किसी भी दशामें संकटसे खाली न था। एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर मृत मांके अन्तिम दर्शनका प्रबल मोह !

रूपको चुप देखकर अविनाशने कहा—'मुझे मेरी रिवाल्वर दे दो। तुम चिन्ता न करो रूप, अविनाश जीवित रहते हुए किसी भी हालतमें गिरफ्तार न होगा।'

रूपने समझ लिया कि अविनाश रुक नहीं सकता। अन्तमें उसने भी उसके साथ जानेका निर्णय किया। उसका निर्णय सुनकर अविनाश झुँझलाया लेकिन......लेकिन फिर भी वह चुप ही रहा। वह इस बातसे भली-भाँति परिचित था कि रूप उसके जीवनके सम्मुख अपने जीवनका कुछ भी महत्त्व नहीं समझता।

लाचार होकर अविनाशको रूपका आग्रह स्वीकार करना ही पड़ा। दूसरा अवसर होता तो वह स्वयं अपना विचार बदल देता किन्तु इस समय न जाने क्यों माका अन्तिम दर्शन करनेकी लालसा वह दबा नहीं पा रहा था। अन्तमें दोनोंने वेश बदला। अपनी-अपनी रिवाल्वर ली और चल पड़े।

× × ×

स्मशानपर अविनाशकी माका दाह-संस्कार करनेवाले व्यक्तिके साथ भी सम्भवतः उतने आदमी न आये होंगे जितने गुप्तचर

वहाँ फैले हुए थे। उनकी निगाहें किसीको ढूढ़ रही थी। स्वयं मि० वजिरानी भी वहाँ उपस्थि थे। उनके अफसरोंको विश्वास था कि यदि अविनाशको अपनी माकी मृत्युका समाचार मिल गया होगा, तो वह अवश्य वहाँ आयेगा। लेकिन मि० वजिरानीकी धारणा कुछ और ही थी। वह जानते थे कि देश-कार्यके सम्मुख अविनाश-को किसीका भी मोह विचलित नहीं कर सकता।

रूप और अविनाश ऐसी जगह पहुंचकर रुक गये जो सुरक्षित थी और जहांसे स्मशानका पूरा दृश्य दिखायी देता था। रूपने स्थिति देखकर यह समझ लिया कि आगे बढ़ना ठीक न होगा। उसने वहीं रुकनेका निश्चय किया और अपना निश्चय अवि-नाशके सम्मुख व्यक्त भी कर दिया।

जब अविनाशने रूपकी एक न सुनी, तब वज्रहृदय रूप भी रो पड़ा। उसने कहा—'अच्छा, तुम जाना चाहते हो तो जाओ अविनाश। लेकिन जानेसे पूर्व मुझे गोली मार दो। तुम्हें मृत्युके मुखमें जाते मैं अपनी आंखोंसे कैसे देख सकता हूँ!'

अविनाशने उत्तर नहीं दिया। उसकी आंखें भी भर आयीं। उसने रूपको गलेसे लगा लिया। ठीक उसी समय अवि-नाशकी माकी चिता धधक उठी। स्नेहमयी जननीके पार्थिव शरीर-को भस्म करनेवाली लपटें उन दोनोंकी आंखोंसे छिपी न रहीं। दोनोंने अश्रु-पूरित नयनोंसे चिताकी ओर देखा और फिर एक साथ ही सिर झुकानेके बाद नमस्कार कर वहांसे चले गये।

# कलाकार या चोर

उस छोटी और अंधकारपूर्ण दूकानमें बैठा हुआ सुरमन रातके समय जब धौंकनीको धौंकता, तब उसके सामनेकी काली दीवार-का निम्न भाग सुलगते अंगरोंकी लालिमासे रंजित हो जाता और अंधकारसे घिरा हुआ सुरमन, अंगारोंके लाल और मधुर प्रकाशमें दूरसे छाया-चित्रकी भाँति दिखायी पड़ता।

उस रातको मधुर चित्रकार उस गलीसे गुजर रहा था। अचानक उसकी आंखें अंगारोंके लाल प्रकाशमें छाया-चित्रकी भांति दिखायी देने वाले सुरमन लोहारकी ओर घुम गयीं। मधुको वह दृश्य मोहक लगा। वह रुक गया और सुरमनकी ओर देखने लगा।

लगभग एक माहतक परिश्रम करनेके बाद मधुने एक चित्र बनाया। सुरमनको जिस चित्रमय अवस्थामें उसने देखा था, उसे कोरे कागजपर तूलिकासे अंकित करनेमें उसे आश्चर्यजनक सफलता मिली! जिसने भी चित्र देखा उसने मधु और चित्रकी प्रशंसा की। कुछ लोगोंने चित्रको मोल लेना चाहा किन्तु मधुने उसे बेचा नहीं।

बात सुरमनके कानों तक पहुँच गयी। किसीने कहा चित्र एक लोहारका है। एक दिन कौतूहलवश सुरमन भी चित्र देखने चला गया। चित्रालयमें बड़े-बड़े लोगोंकी भीड़ देख कर उसे भीतर घुसनेका साहस न हुआ। उसने एक बार दर्शकोंके साफ सुथरे और चमकदार कपड़ोंकी ओर देखा और दूसरी बार कोयलेकी कालिखसे सने अपने मैले-कुचैले कपड़ोंकी ओर।

सुरमन खड़ा ही रहा। धीरे-धीरे चित्रालय दर्शकोंसे खाली हो गया। रह गया केवल मधु। सहसा उसकी दृष्टि द्वारपर खड़े सुरमन पर पड़ी। वह उठकर द्वारपर चला आया और उसने सुरमनसे पूछा, "क्यों खड़े हो?"

सुरमनने उत्तर दिया, "दोपहरसे ही खड़ा हूँ भैया।"

"दोपहरसे!"

"हाँ।" सुरमनने धीरेसे कहा।

"किसलिए?"

जरा हिकिचा कर सुरमनने उत्तर दिया, "चित्रकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। उसे देखने आया हूँ।"

"देख चुके?"

"नहीं।" अपने शरीरके चारों ओर दृष्टि घुमाते हुए सुरमनने कहा, "भीतर जानेका साहस नहीं हुआ। वहाँ बड़े-बड़े लोग थे न! मुझे अपने पास देख कर न जाने क्या-क्या सोचते।"

"ओह!" मधुने मुस्कराते हुए कहा, "आओ, मैं तुम्हें चित्र दिखा दूँ।"

सुरमनने चित्र देखा। देख कर कुछ बोला नहीं। चुपचाप वापस जाने लगा।

मधुने कहा, "देख चुके?"

"हाँ।" हँसनेका प्रयास करते हुए सुरमनने कहा, "अच्छा बना है।"

"सच !" आँखें फैला कर मधुने प्रश्न किया।

सुरमनने रुक कर, मधुको सिरसे पैर तक गौरसे देखा। उसकी मुद्रा देख कर सुरमनको लगा, मधु उसका मजाक उड़ा रहा है।

उसे बड़ा क्लेश हुआ। खिन्न होकर बोला, "हाँ, बड़ा अच्छा है।"

सुरमनके भोलेपनपर मधुको हँसी आ गयी।

कुछ दिनों बाद की बात है। सुरमन शाम होनेसे पूर्व ही बाजार चला गया था। दूकानमें उसके स्थानपर उसका लड़का काम कर रहा था।

रात हो गयी थी। सुरमन बाजारसे दूकानकी ओर लौट रहा था। गलीकी मोड़से आगे बढ़ते ही उसकी दृष्टि अपनी दूकानपर पड़ी। वह ठिठक कर खड़ा हो गया। मधुका चित्र उसकी आँखोंके सामने नाचने लगा। ओठोंपर मुस्कानकी हलकी सी रेखा दौड़ गयी। सुरमन जिधरसे आया था, उधर ही लौट गया।

उस समय भी मधुके चित्रालयमें दर्शकोंकी भीड़ जमा थी। पूर्वकी भाँति सुरमन चित्रालयके बाहर रुका नहीं। धड़धड़ा कर चित्रालयके भीतर घुस गया।

गलरीके पास पहुँच कर सुरमन रुक गया। उसने आँखें गड़ा-गड़ा कर चित्रकी ओर देखा। क्रोध, व्यंगमें परिवर्तित होकर ओठों-पर आ जमा—'हूँ, घमंडी कहींका। कलाकार बनता है। ......चो...र।'

सुरमनके पासके पास खड़े व्यक्तिने आश्चर्यसे सुरमनकी ओर देखते हुए कहा, "चोर?"

सुरमनने निगाहें घुमाकर उसकी ओर देखा ही था कि उसके पीछे खड़ा व्यक्ति बोल उठा, "क्या कहा, चोर !"

सुरमन कुछ बोले इसके पूर्व ही तीसरी आवाज सुनायी दी। थोड़ी ही देरमें 'चोर,......चोर' की मर्मर ध्वनिसे सारा हाल गूंज उठा।

सुरमन उस आकस्मिक परिवर्तनको देखकर घबरा गया। चित्रालयसे बाहर निकल जानेके लिए, भीड़को हटाते हुए वह तेजीसे आगे बढ़ा।

उस समय तक मधु गैलरीसे बाहर आ गया था। उसने चित्रालयसे बाहर जानेके लिए आगे बढ़ने वाले सुरमनकी ओर देखा और उसे पहचान लिया।

सुरमनकी ओर देखनेके बाद ज्यों ही मधुने अपनी आंखें दर्शकोंकी ओर घुमायीं, पचासों दर्शक धीरे-धीरे एक साथ बोल उठे, 'चो...र।'

दर्शकोंपर जमीं मधुकी निगाहें फौरन सुरमनकी ओर घूम गयीं। सुरमन उस समय प्रवेश द्वार पार कर रहा था। मधुने झपट कर उसकी कलाई पकड़ ली और कस कर एक तमाचा उसके मुँहपर मारा—'नीच, गरीबीका ढोंग रचता है !'

तमाचा खाकर पहले तो सुरमन घबरा गया किन्तु ज्यों ही उसकी दृष्टि मधुपर पड़ी वह सँभल गया। मधुको देखते ही उसका हृदय घृणासे भर गया। उसने कड़ी आवाजमें कहा—'उलटा चोर कोतवालको डांटे ! चोर तुम हो कि मैं ?'

दर्शकोंकी भीड़ सुरमन और मधुके समीप पहुँच गयी थी। कुछ लोगोंने मधुसे पूछा, "क्या बात है ?"

प्रश्न सुनकर मधु हैरान हो गया। उसकी समझमें नहीं आया कि क्या उत्तर दे। वह आंखें फाड़-फाड़ कर दर्शकोंकी ओर देखने

लगा। तभी दर्शकोंकी ओर देखते हुए सुरमनने कहा, "आप लोग इसे बड़ा भारी कलाकार समझते हैं! किन्तु मैं जानता हूँ कि यह कलाकार नहीं, चोर है।"

सुरमनकी बातें सुनकर मधुकी परेशानी और भी बढ़ गयी। वह धीरेसे बोला, "चोर....र! मैं चोर!"

"हां, हां तुम। तुम चोर हो।" सुरमनने उत्तर दिया।

"क्या चुराया है मैंने?"

"बताऊँ?"

"अवश्य।"

सुरमनने दर्शकोंकी ओर देखते हुए कहा, आप सब लोग मेरे साथ आइये। मैं अभियोग सिद्ध कर दूँगा।"

उसके स्वरकी दृढ़ताने दर्शकोंको उसपर विश्वास करनेके लिए क्षणभरके लिए बाध्य-सा कर दिया। जिन्हें उसके मस्तिष्कके ठीक होनेमें कुछ संदेह था, वे भी कौतूहलवश उसके साथ जानेको तैयार हो गये।

आगे-आगे मधु और सुरमन जा रहे थे और उनके पीछे दर्शकोंकी भीड़ जा रही थी। सुरमन उस स्थानपर पहुँच कर रुक गया जहाँसे उसकी दूकान अच्छी तरह दिखायी देती थी।

दूकानमें अँधेरा फैला हुआ था। धौंकनीके समीप बैठा सुरमनका पुत्र धौंकनी चला रहा था। उसके सामनेकी काली दीवारके निम्न भागपर अंगारोंकी लालिमा फैली हुई थी। अंधकारसे घिरा हुआ सुरमनका पुत्र अंगारोंके उस लाल प्रकाशमें छाया-चित्रकी भाँति दिखायी देता था।

सुरमनने पहले दूकानकी ओर देखा और फिर दर्शकोंकी ओर दृष्टि घुमाकर हाथसे दूकानकी ओर इशारा करते हुए बोला, "देखिये,

उस चित्रमें यही भाव व्यक्त किया गया है न ? मैं आप लोगोंसे पूछता हूँ कि मधु कलाकार या चोर ?"

"चो...र।" कहकर मधुने मुस्कराते हुए अपना बायाँ हाथ सुरमनके दाहिने कंधेपर रख दिया। दर्शक भी सुरमनके भोलेपनपर हँस पड़े। और सुरमन ? वह यह भी न समझ सका कि लोग हँस क्यों रहे हैं !

---

# कलाकारसे भेंट

लोग कहते,—'वह कलाकार है।' मैं मान लेता कि वह कलाकार है। कला क्या है और कलाकारसे उसका क्या सम्बन्ध होता है, यह मैं नहीं जानता था और न इसके लिए मैंने कभी चेष्टा ही की थी।

कभी कभी मनुष्यके जीवनमें ऐसा भी क्षण आता है जो उसे वह अनुभव लाभ कराता है जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की होती। ऐसे अनुभव प्रायः स्थायी होते हैं। कारण सीधा सा है। विज्ञान-गत अभ्यासमें मनुष्य जो कुछ सीखता है, उसका सम्बन्ध मस्तिष्कसे होता है। अनायास ही प्राप्त होनेवाले ज्ञानका सम्बन्ध हृदयसे होता है। यह ज्ञान तत्काल ही हृदयंगम हो जाता है और वह विविध विचारोंसे घिरे अचेतन मस्तिष्कमें अपना स्थान बना ही लेता है। उसका बोध हमेशा नहीं, समयपर ही होता है।

···तो, मुझे यह बोध हुआ कि मैं 'कला' को न सही 'कलाकार'को तो पहचान ही सकता हूँ। आज मैंने उसे देखा, जिसे लोग कलाकार कहते हैं, तो अनायास ही यह भावना उठी। देखा

तो पहले भी कई बार था किन्तु हृदयकी स्थिति आज सी पहले कभी नहीं हुई थी। क्यों नहीं हुई थी, यह मैं नहीं जानता—जानना भी नहीं चाहता। क्योंकि मैं यह मानने लगा हूँ ज्ञान-विज्ञानसे हृदयकी कोमलतम अनुभूतियाँ सचेष्ट नहीं होतीं। इनसे नीरस और शुष्क तर्क-बुद्धिका ही पोषण होता है।

हाँ, तो मैं कह रहा था 'कला' और कलाकारकी बात! मैं यह भी कह चुका हूँ कि लोग उसे कलाकार कहते और मैं उसे कला-कार मान लेता। अब तो मैं सचमुच उसे कलाकार मानने लगा हूँ। क्यों मानने लगा हूँ, इसे यदि न बताऊँ तो सम्भवतः कहानी अधूरी रह जायगी। इसे बता देना ही अच्छा है।

× × ×

रात थी। मैं बेचैनीसे अपने कमरेमें ही चहलकदमी कर रहा था। सोचता था, क्या होगा? कैसे काम पूरा होगा? यदि चित्र न बना तो कैसे मुँह दिखाऊँगा! ये विचार रह रहकर मस्तिष्कमें चक्कर काट रहे थे। कोई भी ऐसा उपाय सूझ न पड़ता जिससे समस्या-हल हो सकती। कहनेको तो मैंने महाराजके दीवानसे कह दिया था कि मैं चित्र बनवा दूँगा किन्तु जब चित्र बनवानेकी समस्या सामने आयी, तब मुझे ज्ञात हुआ कि मैंने भूल की। सुन्दर, कलापूर्ण चित्र भला बनाता कौन? जिस चित्रकारसे मिला उसीने गर्दन हिला दी। किसीने 'अवकाश नहीं है' कहकर अपना पीछा छुड़ाया और किसीने यह कहकर कि दो 'दिनोंमें वैसा चित्र कैसे बन सकता है, जैसा आप चाहते हैं।'

संयोगकी बात है। जिस समयकी मैं बात कह रहा हूँ, उसी समय मेरे एक मित्र मेरे घर पहुँच गये। मुझे कुछ परेशान देख-कर उन्होंने कहा,—'कुछ चिन्तित दिखाई देते हो?'

'हाँ', कुछ अनमना सा बोला मैं,—'अजीब मूर्खताका शिकार हो गया हूँ। कुछ समझ नहीं पाता कि क्या करूँ और क्या न करूँ।'

बस, उन्होंने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। मुझे कुछ राहत महसूस हुई। मैं भी उत्तर देता गया। उन्होंने पूछा—'मैं जान सकता हूँ कि वह कौन-सी मूर्खता है जिसके कारण तुम इस भाँति परेशान हो?'

'बात यह है भाई,' कुछ सोचकर मैं उत्तर दिया,—'रियासतके महाराजके एक बहुत बड़े मित्र आये हैं। महाराज उन्हें एक कलापूर्ण चित्र भेंट करना चाहते हैं। चित्र बनवानेका भार उन्होंने अपने दीवानके ऊपर लाद दिया था। तुम तो जानते ही हो कि दीवान साहबसे मेरा अच्छा परिचय है। उन्होंने चित्रकी चर्चा मुझसे की। मूर्खतावश बिना कुछ सोचे-समझे ही मैंने उनसे कह दिया कि चित्र मैं बनवा दूँगा। बस, यही तो बात है। दो दिनोंके अन्दर-अन्दर चित्र चाहिये, लेकिन देखता हूँ...।'

'बस', मेरी बातको बीचमें ही काटते हुए मेरे मित्रने कहा—'इतनी-सी बात और इतनी परेशानी!'

उनकी बातसे मुझे कुछ ढाढ़स हुआ किन्तु मैंने अपनी भावना व्यक्त नहीं की और बोला—'हाँ, मैं भी यही समझता था लेकिन अब नहीं। जितने चित्रकार हैं सब जवाब दे चुके हैं।'

'मैं चित्र बनवा दूँगा।'

'आप...।'

'हाँ हाँ, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है।'

'कौन बनायेगा दो दिनोंके अन्दर ऐसा चित्र?'

'—जी!'

कुछ सोचकर मैंने कहा—'क्या सचमुच दो दिनोंमें वह चित्र बना देंगे!'

मेरे मित्रने उत्तर दिया—'हाँ हाँ, वह एक अच्छे कलाकार हैं।

× × ×

निराशाको ढकेलते हुए और आशाको खींचते हुए मैं अपने मित्रके साथ कलाकारके घर पहुँचा। भाग्य अच्छा था, वह मिल गये।

कुछ देरतक इधर-उधरकी बातें हुईं। जो बातें हुईं और जिस प्रकारकी बातें हुईं, उनसे मेरी यह धारणा-सी बन गयी कि कलाकार महोदय, 'बस 'पूरे कलाकार' ही हैं!' फिर भी मैं बैठा रहा। करता भी क्या?

अवसर देखकर मेरे मित्रने कहा—'...जी, आप एक चित्र बनवाना चाहते हैं।'

'कैसा चित्र?'

मेरे मित्रने मेरी ओर देखा। मैंने कलाकार महोदयको चित्रकी रूप-रेखा बता दी। मेरी बातें सुनकर उन्होंने कहा—'मुझे बिलकुल अवकाश नहीं है। फिर दो दिनोंके अन्दर इस प्रकारका चित्र तैयार कैसे हो सकता है!'

उनकी बातें सुनकर मैंने कुछ नहीं कहा। न जाने क्यों मेरी यह धारणा हो गयी थी कि यह चित्र न बना सकेंगे। मेरे मित्र बोले—'देखिये, यह मेरे बहुत घनिष्ठ मित्र हैं। चित्रका प्रश्न इनकी प्रतिष्ठाका प्रश्न है। चित्र तो आपको बनाना ही होगा।'

मेरे मित्र बातें कर रहे थे और मैं बैठा था। मुझे तो एक एक बात भारी मालूम पड़ती थी और साथ ही यह सुनना भी बुरा लगता था कि आप चित्र बना दीजिये, क्योंकि मैं यह समझ रहा था कि मेरी इच्छा पूर्ण न होगी।

बहुत देरतक बातें होती रहीं। अन्तमें मेरे मित्रने 'कलाकार' से कहला ही लिया कि 'यदि यही बात है तो मैं चित्र बना दूँगा।'

आश्वासन पाकर मैं घर लौटा किन्तु चित्त हलका नहीं हुआ।

× × ×

सौभाग्यसे निर्धारित अवधिपर चित्र मुझे मिल गया। चित्र अच्छा था। उस समय मुझसे कोई पूछता तो मैं यही उत्तर देता। आज भी उस चित्रके सम्बन्धमें मेरा उत्तर यही है। वस्तुतः मैं आज भी नहीं जानता कि चित्र कलापूर्ण है, अथवा नहीं। हाँ, यह अवश्य जानता हूँ कि जिसने चित्र बनाया है, उसके पास कलाकारका हृदय है।

× × ×

दीवान साहबने पहले चित्र देखा और फिर चित्रकारका नाम। फिर बोल उठे—'ओह, यह चित्र उन्होंने बनाया है। चित्र तो अच्छा बनाते हैं भाई। यह तो बड़ा कलापूर्ण चित्र है।'

'कला'—उनके मुँहसे यह शब्द निकला ही था कि चित्र-निर्माता का रूप मेरी आँखोंके सामने नाचने लगा—साँवला रंग! बेतरतीब सिरके बाल! वेश-भूषा भी आकर्षित नहीं···हूँ...'

इसके आगे ध्यान भंग हो गया। दीवान साहब बोले—'महाराज बाहर गये हैं। उन्हें आ जाने दो, चित्रका मूल्य दे दूँगा।'

मैंने भी कुछ नहीं कहा। कहना भी क्या था। मैं तो यही सोचकर प्रसन्न था कि चित्र दीवान साहबको पसन्द आ गया।

× × ×

इस बातको कई दिन बीत गये। मुझे यह तो स्मरण था कि चित्रका मूल्य देना है, किन्तु आलस्यवश मैं दीवान साहबसे रुपये नहीं ला सका था। उस दिन अचानक ही मेरे मित्र घर आये और बोले—'भाई' उनका हिसाब साफ कर दो। रुपये अब उनके (चित्रकार) पास पहुँच जाने चाहिये।'

मैंने कहा—'हाँ हाँ' ठीक है। आज मैं दीवान साहबसे रुप
ले आऊँगा।'

उस दिन भी रुपये नहीं ला सका। सकोचवश, रुपये मैंने माँ
नहीं। दूसरी बात यह थी कि उन्होंने फ्रेम लगवानेके लिए मुझे चि
दे दिया था। मैंने भी सोचा—'रुपये ले लूँगा। जल्दी क्या है।

फ्रेम लगवानेके लिए वह चित्र मैंने अपने मित्रको दिया। मे
मित्रने उस चित्रको चित्रकारके घर पहुँचा दिया। जब कई दि
बीत गये और चित्र मुझे नहीं मिला तब मैंने अपने मित्रसे इसक
जिक्र किया। उन्होंने मुझसे कहा—'चित्र अब नहीं मिल सकता।

मैंने पूछा—'क्यों नहीं मिल समता ?'

'...जीने कहा है कि मैं अब चित्र नहीं दूँगा।'

'क्या मतलब ?'

'मतलब सीधा-सा है। जिस प्रकार उनसे चित्र बनवाया गय
था, उसी प्रकार उन्हें रुपये नहीं दिये गये। वह बुरा मान गये हैं

'ओह यह बात है।' मैंने कहा—'भाई रुपये मेरी गलती
कारण उन्हें अबतक न मिल सके। लेकिन इसका यह अर्थ तो नह
कि रुपये उन्हें मिलेंगे ही नहीं।'

मित्रने उत्तर दिया—'मैं उन्हें समझा चुका हूँ। वह कुछ भ
सुननेके लिए प्रस्तुत नहीं।'

'अच्छा, मेरे साथ चलिये।' कहकर मैंने अपने मित्रको सा
लिया और चित्रकारके घरकी ओर चल पड़ा।

× × ×

खासी गोष्ठी थी। वह ( चित्रकार ) भी बैठे थे और उनके मि
भी। हम दोनों भी जम गये। बहुत देरतक इधर उधरकी बातें होत
रहीं। कुछ देर बाद उनके मित्र चले गये। रह गये केवल हम तीन
चित्रकार, मैं और मेरे मित्र।

मैंने चित्रकार महोदयसे कहा—'वह चित्र दे दीजिये।'

उन्होंने उत्तर दिया—'उसकी आशा छोड़ दीजिये।'

उत्तर सुनकर मैं निराश नहीं हुआ। इस सम्बन्धमें उनसे बातें करता ही रहा। बातचीतमें वही सरलता थी, वैसा ही हँसी-मजाक था। वातावरणमें ही जैसे अपनापन भरा था।

यह सब कुछ था किन्तु चित्र देनेके सम्बन्धमें कोई निर्णय नहीं हो रहा था। मैं कुछ उदास-सा हो गया। मेरी इस अवस्थाकी ओर मेरे मित्रने लक्ष्य किया। चित्रकारने भी देखा। मुझे कुछ उदास और कुछ परेशान देखकर उनकी मुखमुद्रा एकदम बदल गयी। कुछ गम्भीर-से होकर उन्होंने ( चित्रकार ) कहा—'ओह, यह बात है! आपकी यदि यही इच्छा है तो ले जाइये चित्रको।'

इसके बाद वह चित्र ले आये। चित्र उन्होंने मेरे सामने रख दिया। पुनः दूसरे कमरेमें चले गये और चित्र लपेटनेके लिए एक अखबार ले आये। इतनी ही देरमें हँसी-मजाकसे गूँजनेवाले कमरेमें एक अजीब वेदना भरी मनहूसी छा गयी। यह सब कैसे हो गया, यह मुझे मालूम नहीं। न कोई हँस रहा था न कोई बोल रहा था। शायद इसका कारण यही था कि हम लोगोंमें सबसे अधिक हँसनेवाले और बात करनेवाले चित्रकार महोदय ही थे। और उन्होंने जैसे ही मुझे चित्र दिया, वैसे ही हँसी उनके ओठोंसे दूर हो गयी।

कुछ देर बाद चित्र मेरे हाथसे लेकर चित्रकारने कहा,—'लेकिन एक बात है...खैर, जाने दीजिये। अब इस बातमें क्या रखा है। मनुष्यके मर जानेके बाद सब कुछ समाप्त हो जाता है। अबसे पाँच मिनट पहले इस चित्रपर मेरा अधिकार था। लेकिन अब नहीं है।"

अखबारमें चित्र लपेटकर उन्होंने मुझे दे दिया। चित्र मैंने ले लिया। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैंने कोई अपराध किया है। फिर भी मैंने कुछ विचार नहीं किया।

कुछ देर बाद चित्र लेकर मैं अपने मित्रके साथ चल पड़ा।

'कलाकार'ने द्वार तक साथ नहीं छोड़ा। द्वारपर पहुँचकर मैंने कहा,—"अच्छा, नमस्ते।'

"नमस्ते," आर्द्र कण्ठस्वर मेरे कानोंमें पड़ा। मैंने घूमकर पीछे देखा। जो कुछ देखना चाहता था, वह दिखायी नहीं दिया। आगे बढ़ा। न जाने क्यों जिस तेजीसे कदम बढ़ रहे थे, उसी तेजीसे मेरा मन मुझे धिक्कार रहा था—तुमने बड़ा बुरा किया। उस चित्रकारको बहुत कष्ट पहुँचाया। क्या देखी नहीं तुमने उसकी आँखें—जो आँसुओंसे भरी थीं!

मनके इस उद्वेगसे मैं कुछ घबरा-सा गया और तेजीसे कदम बढ़ाने लगा। किन्तु इससे क्या अन्तर्व्यथा कम हुई? बिलकुल नहीं। चित्त तबतक शान्त नहीं हुआ जबतक कि मैंने यह मान नहीं लिया कि—'आज एक कलाकारसे भेंट हुई थी। उसे रुपयोंका नहीं, चित्रका मोह था। क्योंकि सचमुच चित्र बहुत सुन्दर बन गया था।

---

# खंडहरोंका देश

●

'तुम ?'

'हाँ, शीरी ।'

'तुम क्यों आये यहाँ ?'

'कोई गुनाह किया है ?'

'हाँ ।'

'शीरी !'

'तुम चले जाओ मनोज ।'

'अच्छा' कहकर मनोज ज्योंही पीछे घूमा त्योंही शीघ्रतासे आगे बढ़कर शीरीने उसका मार्ग रोक लिया । मनोज बोल—'क्यों !'

'तुम जा रहे हो ?'

'हाँ ।'

'लेकिन......।' शीरी चुप हो गयी !

मनोज बोला—'क्या चाहती हो ?'

'कुछ नहीं ।' कहकर शीरीने रास्ता छोड़ दिया । मनोजने आगे

बढ़ना चाहा, किन्तु पैर उठे नहीं! दिलमें एक टीस-सी उठी और वह झुँझला उठा!

—शीरीकी सहायता करनेवाला है ही कौन? एक बुड्ढी मां है, वह कर ही क्या सकती है? मजीद अभी दूध पीता बच्चा है। अगर कुछ हो गया तो?

मनोज सिहर उठा। सहसा उसकी दृष्टि शीरीके मुखपर जा पड़ी और देखा उसने, नयन कोरोंमें दबी आँसूकी दो बूँदों को। मनोजने कहा—'रो रही हो शीरी!'

शीरीको लगा कि यदि वह बोली तो हृदयकी समस्त वेदना आँसू बनकर बाहर निकल आयेगी। उसने जबर्दस्ती दाँतोंसे ओठ दबा लिये और आगे बढ़ गयी। दूसरे ही क्षण मनोज भी उसके समीप पहुँच गया और शीरीकी नवकिसलय-सी कोमल हथेली पकड़ते हुए बोला—'तुम रो क्यों रही हो शीरी! मनोज तो अभी जीवित है। तुम्हें उसपर विश्वास नहीं?'

और शीरी? वह बेबस हो गयी। लाख प्रयत्न करके भी हृदयका आवेग दबा न सकी और लगी फूट-फूटकर रोने!

इसी समय तेज कोलाहलकी आवाज मनोजके कानोंमें पड़ी। सात्वना देनेके लिए खुला मुँह, खुला ही रह गया। जबान हिली तक नहीं और वह दरवाजेकी ओर झपट पड़ा।

× × ×

'तुम।' एक हृष्ट-पुष्ट युवकने आग्नेय-नेत्रोंसे मनोजकी ओर देखते हुए कहा!

'क्या बात है?'

'हूँ, क्या बात है! चूड़ियाँ पहन लो तुम लोग।' तिरस्कार करते हुए युवक बोला!'

'कुछ पता भी लगे !'

'पूछो इस भीड़से ।' कुछ दूरीपर एकत्र जन-समूहकी ओर संकेत करते हुए युवक बोला—'लोगोंके घर फूंके जा रहे हैं ! बूढ़े-बच्चोंको कत्ल किया जा रहा है ! माँ-बहनोंकी इज्जत लूटी जा रही हैं ! क्या तुम्हें कुछ नहीं मालूम ?'

'हूँ,......क्या ये लोग भागकर आये हैं ।'

'हाँ, भागकर आये हैं । देख रहे हो इनके बच्चोंको ! किस कदर बिलख रहे हैं ये !' युवक आगे बोल न सका । फड़कते हुए ओंठकी गति मन्द करनेके लिए ज्योंहीं उसने ओठ दाँतोंके बीच दबाया, ओठ कट गया और रक्त बह निकला । सम्भवतः उसे इसका भान नहीं हुआ । मनोजको वहीं छोड़कर वह आगे बढ़ गया ।

मनोज सोचने लगा—क्या सचमुच मनुष्य बर्बर हो गया है ? क्या हाथ लगता है उसके, लोगोंके घरोंको फूँक कर, उन्हें तबाह और बर्बाद कर ! अगर यही स्थिति रही तो......।

वह आगे न सोच सका ! मस्तिष्क घूमने लगा और वह तेजीसे आगे बढ़ गया ।

× × ×

'तुम !' सहमी हुई दृष्टिसे मनोजकी ओर देखते हुए कल्पना बोली !

'कल्पना !' कुछ उदास-सा बोला मनोज ।

'कहाँ थे तुम ?'

'बाजार गया था जरा ।'

'तुम बाजार गये थे, यहाँ लोगोंकी जानोंपर आ पड़ी । पिताजी तुम्हें खोजने गये हैं । शहरमें आग लगी हुई है । आखिर कौन-सा ऐसा काम था जो तुम्हें बाजार जाना पड़ा ?'

'तुम नहीं समझ सकती कल्पना', कदम आगे बढ़ाते हुए मनोज बोला—'मनुष्य पिशाच हो गया है! बूढ़े बच्चे, स्त्री, किसी पर भी आक्रमण करते उसे लज्जा नहीं आती!'

मनोजके पीछे-पीछे चलनेवाली कल्पनाने कहा—'जो कुछ तुम कहते हो, उसे तो समझती हूँ। किन्तु तुम्हारे कहनेका तात्पर्य क्या है, यह नहीं समझ सकी! स्थितिसे परिचित होते हुए भी यदि कोई गलती करे और उसे स्वीकार न करें तो उसकी बातोंका अर्थ समझा ही कैसे जा सकता है।'

—'आत्म-तुष्टिके लिए किया गया वस्तु-विश्लेषण, उच्चकोटिका तर्क अवश्य हो सकता है किन्तु वह वस्तुस्थितिका प्रतीक नहीं हो सकता, यह निर्विवाद है।'

'अर्थात्?' कल्पनाने प्रश्न किया।

'तुम दर्शन पढ़ती हो'—मनोजने समझना प्रारम्भ किया—'इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारी नारी-सुलभ भावुकता नष्ट हो गयी है। मेरी बातका सीधा अर्थ यही है कि मुझे दोषी ठहरानेके पूर्व क्या तुमने यह भी जाननेकी चेष्टा की कि मैं बाहर क्यों गया था? क्या तुमने यह भी पूछा कि मेरी ही भाँति और लोग जो बाहर हैं, उनकी दशा क्या है? अपने स्वार्थोंका पृष्ठ-पोषण करना ही तो जीवन नहीं है कल्पना!'

कल्पनाको मनोजकी बातें अत्यधिक रुचिकर प्रतीत होने लगी थी। नारीकी यही स्वाभाविक गति है। उसके विरोधमें भी समर्पण-की भावना निहित रहती है, यदि उसके नारीत्वका तिरस्कार न किया जाय। कल्पनाके हृदयमें मनोजके प्रति अत्यधिक स्नेह था, श्रद्धा थी और थी ममता!

बातोंका सिलसिला जारी रखनेके लिए कल्पनाने कहा—'सब समझती हूँ भैया! किन्तु तुम्हीं बताओ न, यदि इस भयावह

समयमें भी, जब चारों ओर रक्त-पात हो रहा हो, तुम्हारे बाहर रहनेपर मेरा दिल बेचैन न हो जाता तो फिर तुम्हारे प्रति मेरे स्नेहका, मेरी ममता और श्रद्धाका अर्थ ही क्या होता! प्रत्येक समय संकुचित-दृष्टिकोण क्या असत्यपर ही आधारित होता है?'

'सत्यका सहारा लेकर मनुष्यकी महत्ता घटानेकी चेष्टा मत करो कल्पना',—मनोजने उत्तर दिया—'जहाँ सूर्यके प्रकाशककी आवश्यकता होती है, वहाँ दीपकके प्रकाशके काम नहीं लिया जा सकता, यद्यपि प्रकाश सूर्यमें भी है और दीपकमें भी।'

मनोजका तर्क कल्पनाको पुष्ट अवश्य प्रतीत हुआ, फिर भी वह चुप न रही। शीघ्र ही पराजय स्वीकार करना उसकी प्रकृतिके विरुद्ध था। उसने कहा—'तुमने जो कुछ कहा है, मैं उसे स्वीकार करती हूँ लेकिन......।'

इसके आगे कल्पना बोल नहीं सकी! तेज कोलाहलने उसकी वाक्-धाराको अवरुद्ध कर दिया। वह दौड़कर खिड़कीके समीप पहुंच गयी!

कल्पनाने खिड़कीसे झाँक कर ज्योंही गलीकी ओर देखा त्योंही चीख उठी और उलटे पैरों मनोजके पास लौट आयी।

मनोजने कल्पना की ओर देखा तक नहीं! तीर-सा कमरेसे बाहर हो गया!

× × ×

'तुम!' भीड़का नेतृत्व करनेवाले उस हृष्ट-पुष्ट युवकने कहा।

'हाँ, मैं।'

'क्यों खड़े हो तुम यहाँ?'

'तुम्हारी आँखें खोलनेके लिए!'

'लेकिन हमारी आँखें खुली हैं। हट जाओ सामनेसे! बहुत सुन चुके हैं तुम्हारी। तुम्ही लोगोंने सत्य और अहिंसाका पाठ

पढ़ा-पढ़ाकर हमारे रक्तको पानी कर दिया है। हमने कसम खायी है; हम बदला लेंगे।'

'हूँ!' मेघ गम्भीर स्वरसे मनोजने कहा—'साम्प्रदायिक उत्तेजनाके वशीभूत होकर असहायोंपर आक्रमण करना प्रतिशोध नहीं, कायरता है। यदि साहस हो तो उनका सामना करो जिन्होंने जन-साधारणकी शान्ति और सुख नष्ट कर डाला है। जो अतातायी हैं, जो गुण्डे हैं, जो लुटेरे और डाकू हैं।

मनोजके चुप होते ही भीड़में खड़े एक व्यक्तिने तड़पकर कहा—'हटा दो इसे सामनेसे।' तत्काल ही दूसरा व्यक्ति बोल उठा—'यह दलाल है।' साथ ही तीसरी आवाज आयी—'पहले इसीसे समझ लो!' बस, इसके बाद ही वातावरण कोलाहल पूर्ण हो गया। केवल यही सुनायी पड़ने लगा—'मारो, मारो······यह दलाल है ······कुत्ता है······लुच्चा है······मुसलमानोंका एजेण्ट है··· पहले इसीसे समझ लो······पहले इसीको खत्म करो······'

उपस्थित जन समूह काफी उत्तेजित हो गया किन्तु मनोजपर उत्तेजनाका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह चट्टान-सा दृढ़ रहा। अचानक आगे खड़े पाँच-छः व्यक्तियोंको पीछे खड़े बीस तीस व्यक्तियोंने एक साथ धक्का दिया! फिर क्या था! देखते देखते मनोज भीड़के पैरोंके नीचे आ गया!

× × × ×

'तुम!'

'हाँ मैं!'

'यह क्या हुआ? खूनसे लथपथ मनोजको देखकर शीरी काँप उठी।'

'यह बातें करनेका समय नहीं शीरी! शीघ्र तैयार हो जाओ!

तुम्हें यहाँसे जाना ही होगा। अब यह स्थान संकटसे खाली नहीं है।'

शीरीकी बूढ़ी माँ भी वहीं बैठी थी। पिछले कई दिनोंसे मार धाड़की खबरें वह बराबर सुन रही थी। लेकिन उनका उसके ऊपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। वह सोचती थी—हमें कोई क्यों मारेगा। हमारे पास रखा ही क्या है? मुहालवाले हमेशासे सहायता करते आये हैं। लेकिन मनोजकी बातें सुनकर उसका दिल भी धकड़ने लगा! नवयौवना शीरीको देखते ही न जाने क्यों वह काँप उठी! भर्राई हुई आवाजमें बोली—'तुम क्या कह रहे हो बेटा? हमारी तो किसीसे दुश्मनी नहीं है! हम तो तुम्हीं लोगोंके टुकड़ों पर पले हैं!'

मनोजको काफी चोट लगी थी। रक्त भी काफी निकल चुका था। एक-एक क्षण उसे भारी मालूम पड़ रहा था। फिर भी साहस करके वह खड़ा रहा और बोला—'कुछ न पूछो अम्मा। इस समय इंसान, शैतान हो गया है। कलतक जिस कामको वह हिकारतकी नजरसे देखता था, आज उसे उसमें सबाव नजर आ रहा है।'

मनोज आगे बोल न सका। एकाएक संज्ञा-शून्य होकर धड़ाम से पृथ्वीपर गिर पड़ा।

× × ×

'तुम!'

'हाँ मैं।'

'तुम मुझे ही धिक्कार रहे हो।'

'कल्पना, यदि शीरीके स्थानपर—ईश्वर करे ऐसा दिन कभी न आये—पुलिसकी हिरासतमें तुम होती तब?'

'भैया!' कल्पना चीख उठी।

'तुमने कितना बड़ा अन्याय किया है। शीरी असहाय है, बेबस है, इसलिए तो तुम्हारे पास आयी थी। यदि ऐसा नहीं होता तो वह तुम्हारे पास आती ही क्यों? क्या उसे अपनी इज्जतका खयाल नहीं था? क्या वह यह नहीं जानती थी कि मैं मुसलमान हूँ और इस समय जब कि साम्प्रदायिक विद्वेषाग्नि बुरी तरह भड़की हुई है, एक मुसलिम युवतीका धर्मान्ध हिन्दुओंके बीचसे गुजरना खतरेसे खाली नहीं है। शीरी नादान नहीं कल्पना, वह सब कुछ जानती है। सब कुछ जानते हुए भी उसने तुम्हारे पास आनेका साहस किया, क्या यही उसकी सचाईका पर्याप्त प्रमाण नहीं है?'

मनोजके चुप हो जानेपर कल्पना भी चुप ही रही। उसे अपना मस्तिष्क विकृत सा होता मालूम पड़ा। कभी घायल पिताकी उस अवस्थाकी तसवीर उसकी आँखोंके सामने नाचने लगती जिसे देखकर वह चीख उठी थी, और कभी दीनताके प्रतीक शीरीके अश्रु-स्नात मुखकी! वह शीघ्रातिशीघ्र यह जाननेके लिए बेचैन हो उठी कि शीरीको गिरफ्तार कराकर उसने गलती की है या नहीं? मनोज जो कुछ कह रहा है, क्या वह सच है या वह केवल अपनी उदारता व्यक्त कर रहा है? क्या सचमुच उसे घायल करनेके लिए शीरीने षड्‌यन्त्र नहीं रचा था? आखिर शीरी है तो मुसलमान ही। मनोज कहीं दूर गया भी नहीं था, फिर वह घायल हो कैसे गया?

कल्पनाने बहुत सोचा किन्तु व्यर्थ! किसी निष्कर्षपर पहुँच नहीं सकी!

× × ×

कई दिन बीत गये! स्थितिमें सुधार नहीं हुआ। साम्प्रदायिक दंगेका रूप बराबर उग्र ही होता गया।

अड़तालीस घण्टेके लिए 'कर्फ्यू आर्डर' लगा हुआ था। सड़क पर मिलिटरी-पुलिस और फौजियोंके अतिरिक्त एक परिंदा भी नजर नहीं आ रहा था! खिड़कीके समीप खड़ा मनोज शून्य दृष्टिसे अन्तरिक्षकी ओर देखते हुए सोच रहा था—आखिर यह सुन्दर शहर भी खँडहर हो ही गया! कितना पतित हो गया है आजका मनुष्य! शहरमें उत्तेजना फैली हुई थी, इसलिए मैं शीरी-को सांन्त्वना देने गया! वहाँसे लौटा तो उत्तेजित भीड़को देखा। घर पहुँच कर कल्पनाको चिंतित पाया! उसे समझा भी नहीं पाया था कि साम्प्रदायिक-विद्वेषका शिकार होनेवाले पिताके घायल होनेका समाचार सुना। कितने अधिक उत्तेजित हो गये थे मुहल्लेके लोग उस समय? उन्हें उत्तेजित देखकर ही तो मैं शीरीके घर जा रहा था। शीरी मुसलमान है। मैं उसकी देख भाल करता हूँ। मैं नहीं चाहता कि निरीह मरें, लुटें! इसलिए ही तो मुझे उनके क्रोधका शिकार होना पड़ा!...और शीरी! क्या हाल होगा उसका? मुझे रक्तसे लथ-पथ देखकर वह कितना घबरा गयी थी। मैं बेहोश हो गया! शीरी मेरी बेहोशीकी सूचना देने मेरे घरपर आयी। कल्पनाने शीरीसे मेरी बेहोशीका समाचार पाकर मुहालवालोंको सूचना दी और मुहालवालोंने शीरीपर मुझे घायल करनेका लगाकर उसे गिरफ्तार करा दिया! शीरी गिरफ्तार हुई, उसकी मा अभियोग गिरफ्तार हुई! कमबख्तोंने मासूम भाईको भी नहीं छोड़ा। ऐसी स्थितिमें अगर मैं उनकी जमानत करवा कर उन्हें मुक्त न कराता तो क्या कर्तव्यच्युत न होता...?

सहसा,—'भैया, भैया' की ध्वनि सुनकर मनोजकी विचार-धारा भंग हो गयी। उसने घूमकर पीछे देखा। कल्पना बेतहाशा दौड़ी हुई उसकी ओर ही आ रही थी! उसे घबरायी हुई देखकर मनोजने पूछा—'क्या है कल्पना?'

दौड़कर खिड़की बन्द करते हुए कल्पनाने हाँफते-हाँफते कहा—'ओह, तुम भी कैसे हो! खिड़की खोलकर खड़े हो! अभी-अभी उस पारके एक मकानकी खिड़कीसे एक आदमी झाँक रहा था। पुलिसने उसे गोली मार दी। मैं छतपर थी। उसे घायल होते मैंने स्वयं देखा है।'

मनोजने कल्पनासे कुछ नहीं कहा। उसे प्रतीत हुआ मानो, उसका मस्तिस्क खराब हो गया है। वह चुपचाप एक आराम कुर्सीपर लेट गया।

× × × ×

मनोज तिरष्कृत है, घृणित है, उपेक्षित है। क्योंकि वह समझता है कि धर्मके नामपर खून बहाना पैशाचिकता है—पाप है! सड़कपर, गलीमें, बाजारमें, हाटमें मनोज जहाँ जाता है वहाँ उसके सजातीय उसकी भर्त्सना करते हैं, उसे फटकारते हैं, उसे जलील करते हैं!

दंगा शान्त हो गया है, किन्तु मनोज अशान्त है। राजसी वैभवके प्रतीक लाहौरको 'खँडहरोंके देश'में परिणित देखकर!

वहाँ—उस ओर, आजसे दो मास पूर्व ही तो भव्य अट्टालिकाओंकी कतार-सी थी! अब? अब क्या है वहाँ! ईंट-पत्थरोंका अम्बार, मलबेका ढेर! चारों ओर बिखरे हुए कोयले और अधजली लकड़ियोंको देखकर मरघटका ही तो भान होता है!

और वह बाजार! गोटापट्टी, हीरा-पन्ना, मोती सभी तो बिकते थे वहाँ और अब? ईंटों और पत्थरोंका ढेर शेष है! ग्राहकोंके स्थानपर पुलिस और फौजियोंके समूह हैं। दूकानदारोंके स्थानपर निराशा, व्यथा, उत्तापसे भरी हुई सहस्रों आँखें हैं, लुटे हुए, बेकस और बर्बाद लोगोंकी।

ओह! वह कौन है? क्यों घूम रही है वह इस भाँति अस्त व्यस्त। न केश ठीक हैं; न वस्त्र व्यवस्थित हैं। हाथमें खाली गिलास! सम्भवतः अपने नन्हेंके लिए दूध खोज रही है वह! और वह बुड्ढा? अरे ईंट और मलबेके ढेरमें क्या खोज रहा है वह! और यह काफिला कैसा! निराश, और बर्बाद नागरिक कहाँ जा रहे हैं! शहरसे दूर—शान्तिकी खोजमें?

अचानक मनोजकी आँखें मंथरगति से आगे बढ़ रही शीरीरपर पड़ीं। वह थी, उसकी मा थी और था छोटा भाई! सोचा मनोजने—कहाँ जा रहें हैं ये!

'शीरी!'

मनोजको देखकर रुक गयी शीरी।

'हाँ।'

'कहाँ जा रही हो तुम?'

'जहाँ पनाह मिल जायगी।'

'समझा नहीं!'

शीरी चुप रही।

मनोजने विह्वल होकर कहा—'जवाब दो शीरी।'

'मनोज, मरहूम भाईजान मुझे तुम्हारी देखरेखमें छोड़ गये थे।'

'क्या मैंने अपना वादा पूरा नहीं किया शीरी?

'हजार मुसीबतें उठाकर भी तुम पीछे नहीं हटे। एक भाई अपनी बहनके लिए जो कुछ कर सकता था, तुमने किया।'

'फिर?'

'लेकिन मेरा फर्ज भी तो है कुछ।'

'साफ-साफ कहो शीरी! तुम क्या चाहती हो।'

'मनोज भाई!'

मनोज चुप !

'बहनको यह मालूम हो जाय कि उसका वफादर भाई उसके कारण मुसीबतोंका शिकार हो रहा है तो क्या बहनका यह फर्ज नहीं हो जाता कि वह...'

शीरीको बीचमें रोकते हुए मनोजने दृढ़ और गम्भीर स्वरमें कहा—'शीरी, मैं इससे अधिक सुननेके लिए तैयार नहीं हूँ। जो कुछ मैंने किया, अपना कर्तव्य समझकर किया! दुनिया मूर्ख है! मुझे उसकी परवाह नहीं।'

'कुछ दिन बाद तो होगी।' शीरीने आकुल होकर कहा—'तुम्हें कल्पनाकी शादी करनी है! समाजसे दुश्मनी मोल लेनेपर कैसे काम चलेगा? मेरा क्या। दिन ही तो काटने हैं। काट लूँगी कहीं। तुम जाओ मनोज भाई। मुझे मेरे भाग्यपर छोड़ दो।'

शीरी चली गयी! मनोजने उसे रोका नहीं!

× × ×

कल्पना अपने पिताके पास बैठी थी। उस हृष्ट-पुष्ट युवकने, जो मनोजसे कई बार भिड़ चुका था, कल्पनाके पास पहुँचकर कहा—'सुना कुछ कल्पना!'

'क्या?' कल्पनाने प्रश्न किया।

'शीरी शहर छोड़कर चली गयी।'

'चली गयी!'

'हाँ!'

'कहाँ?'

'यदि बताना ही होता तो जाती ही क्यों? मुसलमान बड़े स्वार्थी होते हैं कल्पना! आखिर शीरी थी तो....'

'लेकिन तुम कहना क्या चाहते हो?'

'यही कि उसके कारण मनोजका मित्र भी कानूनके शिकंजेमें फँस जायगा। उसने मनोजके कहनेपर शीरीकी जमानत की थी न !'

कल्पनाने फिर कुछ नहीं पूछा। वह चला गया।

कुछ देर बाद ही मनोज घर पहुँचा ! थका था, इसलिए सोना चाहता था। लेकिन वह अपने कमरेमें न जा सका। कल्पनाने उसे राहमें ही रोक लिया और बोली—'शीरी चली गयी मनोज भैया ?'

'हाँ, कल्पना।'

'जिसने उसकी जमानतकी थी अब उसका क्या होगा ?'

'कल्पना !

'हाँ।'

'किसने कही हैं ये बातें तुमसे ?'

कल्पनाने उस यवकका नाम बता दिया। उसकी बातें सुनकर मनोजने कहा—'जानती हो कल्पना, ये बातें मुझे बदनाम करनेके लिए ही कही जा रही हैं ! शीरीकी जमानत डा० करीमने की थी ! फिर अब जमानतकी बात ही कैसी ! मुकदमा तो समाप्त हो चुका है !'

'मनोज भैया !'

'जानती हो कल्पना, शीरी क्यों गयी !'

कल्पना अपलक नयनोंसे मनोजका मुँह देखने लगी ! मनोज बोला—'शीरीने समझा, मेरी बदनामी उसके कारण ही हुई है। उसके न रहने से शायद लोग मुझे बदनाम न करें !'

'सच !'

'हाँ कल्पना, अब तक तो मेरी दो बहनें थीं लेकिन अब...'

कल्पना चुप रही ! उसकी आँखोंके सामने दुर्दशाग्रस्त शीरीकी तसवीर नाच रही थी ! और......कल्पनाको ऐसा मालूम पड़ा

कि वह चारों ओर सैकड़ों व्यक्तियोंसे घिरी है। सब एक स्वरसे मनोजकी निन्दा कर रहे हैं—उसे कोष रहे हैं......

कल्पना घबरा-सी गयी! माथेपर पसीनेकी बूँदे झलने लगी! उसने विह्वल होकर कहा—'भैया!'

उदास और व्यथित मनोजने कहा—'क्या है कल्पना।'

'इस शहरसे तो जी बुरी तरह ऊब गया अब!'

'हाँ, मेरी भी यही दशा है कल्पना!'

'मुझसे तुम्हारा तिरस्कार नहीं देखा जाता।'

'और मुझसे ये खँड़हर नहीं देखे जाते!'

भाव-विह्वल कल्पनाने अपना अश्रु-स्नात मुख पोंछते हुए कहा—'तो चलो हम 'खँडहरोंके देश' से दूर—कहीं और चलें 'भैया!'

× × ×

मैदान, खेत, नदी, नाला, एकके बाद दूसरेको पार करते हुए ट्रेन चली जा रही थी और सोच रही थी कल्पना—काश, शीरीसे कहीं भेंट हो जाती......

---

# दोस्त और दुश्मन

मित्रताकी यह कहानी शुरू होती है उस दिनसे जब बकरीदूब हेलिया और हरसू मोचीने धीमर ताड़ीवालेका मुकाबला एक साथ मिलकर किया था। तबसे बराबर बकरीदू और हरसू एक साथ ताड़ीखानेमें जाते। कभी बकरीदू ताड़ीके खर्चका बोझ संभालता और कभी हरसू। मित्रता यहाँ तक बढ़ गयी कि एकके बिना दूसरेको ताड़ी पीनेमें मजा ही न आता।

कुछ दिनों पूर्वकी बात है। हिन्दू-मुसलिम झगड़ेके सम्बन्धमें तरह-तरहकी अफवाहें फैली हुई थी। हिन्दू, मुसलमानको सशंक दृष्टिसे देखता था और मुसलमान हिन्दूको। लेकिन इन बातोंका प्रभाव बकरीदू और हरसूकी मित्रतापर रंच-मात्र भी नहीं पड़ा। दोनों उसी भाँति मिलते, उसी भाँति बातें करते और उसी भाँति ताड़ी पीने जाते। अगर बकरीदूके सम्बन्धमें कोई कुछ बुरी बात हरसूसे कहता तो हरसू कहनेवालेकी जबान काट लेनेके लिए तैयार हो जाता और अगर कोई हरसूके सम्बन्धमें बकरीदूसे कुछ ऊल-

जलूल कहता तो बकरीदू भी कहनेवालेके साथ हरसूकी भाँति ह
पेश आता।

संयोगकी बात है। उस दिन शहरका वातावरण अफवाहोंवे
कारण कुछ अधिक गर्म हो गया था। एक दो स्थानोंपर हिन्दू
मुसलमानोंमें झड़प भी हो गयी थी। न तो कोई हिन्दू मुसलमानके
महालमें दिखाई देता, न कोई मुसलमान हिन्दूके महालमें!

शाम हो गयी थी। न तो बकरीदू हरसूके पास गया, न
हरसू बकरीदूके पास! बकरीदू सोचता अगर आज मैं हरसूके पास
नहीं पहुँचा हूँ तो कोई हर्ज नहीं, हरसू ही मेरे पास आ जायेगा।
हरसू सोचता—बकरीदू आया क्यों नहीं?

धीरे-धीरे शाम बीत गयी। चाँद आकाशमें ऊपर चढ़ने लगा!
लोग अपने अपने घरकी ओर जाने लगे लेकिन हरसू सड़ककी
पटरीपर ही बैठा रहा। रह-रह कर उसकी आकुल आँखें जिस
ओरसे बकरीदू आया करता था, उस ओर ही उठ जातीं। धीरे-धीरे
एक घण्टा बीत गया किन्तु बकरीदू नहीं दिखायी दिया! अन्तमें
हरसूसे रहा नहीं गया। उसने अपने औजार समेटे और डेरेकी
ओर चल पड़ा! डेरेपर पहुँचकर हरसूने अपने औजारोंको रख
दिया और बकरीदूके मकानकी ओर चल पड़ा! राहमें एक मन-
चलेने हरसूसे कह ही तो दिया, 'क्यों हरसू, आज अकेले ही
क्यों हो!'

हरसूको लगा, किसीने उसके कलेजेमें तेज बर्छी चुभो दी है!
बोली कसनेवालेको उसने कोई जवाब नहीं दिया और आगे बढ़
गया।

एक ओर हरसूका यह हाल था और दूसरी ओर बकरीदू बहे-
लियेको लोगोंने परेशान कर रखा था—

'क्यों मियाँ, आज तुम्हारी दोस्तीका रङ्ग फीका क्यों पड़ गया?'

जाओ न जरा हरसूके पास। हरसू तो तुम्हारे यहाँ आयेगा नहीं, यह तय है।'

न जाने कैसे अपढ़ और मूर्ख बकरीदूके दिलमें भी यह बात जम गयी कि ऐसी बातें कहनेवाले किसीको खुश नहीं देखना चाहते। फिर भी इस वाक्यका प्रभाव उसपर अवश्य पड़ा कि—'हरसू तो तुम्हारे पास आयेगा नहीं।'—रह-रह कर यह वाक्य उसके कानोंमें गूँजने लगा!

बकरीदूने इस परेशानीसे छुटकारा पानेकी बहुत चेष्टा की लेकिन कामयाब न हुआ। अन्तमें चिढ़ कर उसे इसी निर्णयपर पहुँचना पड़ा कि अगर सचमुच मेरी ही भाँति हरसूका दिल भी जलता होगा तो वह अवश्य आयेगा।

हरसू जो डेरेसे चला तो चलता ही गया। राहमें कितने ही लोगोंने उसे उलटा-सीधा समझाया-बुझाया, उसे रोकनेकी चेष्टा की लेकिन हरसू रुका नहीं! यही नहीं, उसने किसीसे बातें भी नहीं की। इसलिए नहीं कि सचमुच वह अपने मित्रकी बुराई करनेवालों को उत्तर नहीं देना चाहता था किन्तु इसलिए कि बकरीदूके पास पहुँचनेके लिए उसके पास केवल आध घण्टेका समय बचा था। अगर आध घण्टेके अन्दर वह बकरीदूके पास नहीं पहुँच सका, तो फिर पहुँच भी नहीं सकता, क्योंकि उसके बाद 'कर्फ्यू-आर्डर' शुरू हो जायगा!

एक ओर हरसूके पैर तेजीसे चल रहे थे और दूसरी ओर बकरीदूका मस्तिष्क! जैसे-जैसे समय बीतता जाता वैसे-वैसे बकरीदूकी आशा भी क्षीण होती जाती—'अगर हरसू सचमुच नहीं आया तो वह इन फबतियाँ कसनेवालोंको किस मुंहसे उत्तर देगा? किस तरह उन्हें समझा सकेगा कि मेरी प्रतीक्षा करते-करते उसे देर हो गयी होगी, इसलिए वह नहीं आया।'

समय की गतिके साथ साथ हरसूकी चाल भी तेज होती जाती थी। वह सोचता जाता था,—'जैसे भी हो बकरीदूसे मिलना होगा अवश्य। अन्यथा कमबख्त बोटियाँ नोच डालेंगे। फिर बकरीदू भी न जाने क्या सोचने लगे! आखिर वही तो आता था रोज मेरे पास! मैं तो कभी गया नहीं।'

जिस समय हरसू हिन्दुओंकी बस्तीको पार कर लेने के बाद सड़कके उसपार मुसलमानोंकी बस्तीकी सीमापर पहुँचकर आगे बढ़ने लगा, उस समय एक पुलिस कांस्टेबुलने उसे रोककर पूछा,—'कहाँ जाओगे?'

और कोई समय होता तो यह निश्चित था कि केवल लाल पगड़ी देखकर ही हरसू सहम जाता। किन्तु उस समय तो उसके सिरपर एक अजीब खब्त सवार था। आगे बढ़नेका प्रयास करते हुए कहा, उसने कि 'अभी तो पन्द्रह-बीस मिनट बाकी होंगे। फिर क्यों रोकते हैं आप?'

पुलिस कान्सटेबुलने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ते हुए कहा,—'अरे बेवकूफ, मालूम हैं कहाँ जा रहा है? इधर केवल मुसलमान ही रहते हैं। लाशतकका पता नहीं लगेगा बच्चू!'

पुलिस कान्सटेबुलकी बातें सुनकर हरसू रुक गया। उसे मालूम हुआ जैसे उसका माथा चक्कर खा रहा है और किसीने उसे दवा देकर उसकी पीड़ाको एक दम दूर कर दिया है। वह सोचने लगा,-'सचमुच मैं कहाँ जा रहा हूँ। अगर इस मुहालमें रहनेवाले मुसलमानोंको मालूम हो गया कि मैं हिन्दू हूँ तो वे मुझे जीवित नहीं छोड़ेंगे। लेकिन बकरीदू...जरूर इस डरके कारण ही बकरीदू भी मेरे पास नहीं आया।'

समय बीत रहा था। हरसूको घर भी पहुँचना था। फिर वह

आगे नहीं बढ़ा। उलटे पैरों लौट गया! यद्यपि उसे इस बातका दुख जरूर था कि बकरीदूके पास पहुँच कर भी वह उससे मिल न सका!'

उस दिन हरसूके न आनेसे बकरीदूको बड़ा दुःख हुआ। लोगोंकी तानाकशीकी स्मृतिने उसे रातको सोने नहीं दिया। दूसरे दिन उसे अपना शरीर टूटता मालूम हुआ। आँखें जल रहीं थीं। सिरमें भयानक पीड़ा हो रही थी। बिस्तरपर लेटे लेटे वह 'कर्फ्यू-आर्डर' दूर होनेकी प्रतीक्षा करने लगा।

धीरे-धीरे वह समय भी आ गया! बकरीदूने बिस्तर छोड़ दिया और शरीरकी थकावट दूर करनेकी गरजसे ताड़ी खानेकी ओर जानेके लिए घरसे बाहर निकल पड़ा।

मुहालके अन्दर राहमें जिसने भी बकरीदूको देखा, वह हँस पड़ा। बकरीदू हँसनेवालेको देखकर इस तरह आँखें नीची कर लेता मानो उसने कोई बड़ा अपराध किया हो। जबतक मुहालसे वह बाहर नहीं आया, तबतक उसके कलेजेपर एक बोझा सा पड़ा रहा।

जिस समय बकरीदू ताड़ीखानेमें पहुँचा, हरसू वहाँ उपस्थित था। बकरीदूने हरसूको देखा और हरसूने बकरीदू को। किन्तु दोनोंमेंसे एकको भी यह मालूम न हुआ कि दूसरेने भी उसे देखा है!

हरसूको देकर भी बकरीदू उसकी ओर मुड़ा नहीं। उसने सोचा—'मुझे देखकर हरसू बुलायेगा ही और तब मैं उसे खूब सुनाऊँगा।' हरसू यह सोच कर चुप रह गया कि 'बकरीदू जब मुझे देखेगा तब आप ही मेरे समीप चला आयेगा। उस समय मैं उसे कलकी सारी बातें सुना दूंगा और उससे पूछूँगा कि क्या तुम भी मेरी ही भाँति परेशान थे?'

बकरीदू आगे बढ़कर ताड़ीवालेके समीप चला गया और हरसूकी ओर पीठ करके खड़ा हो गया। न तो उसने ताड़ी वालेसे ही कुछ कहा, न हरसूकी ओर देखा ही। उसी प्रकार खड़ा-खड़ा हरसू द्वारा बुलाये जानेकी प्रतीक्षा करता रहा वह।

उसी अवस्थामें बकरीदू लगभग दस पन्द्रह मिनट तक खड़ा रहा। छिपी निगाहोंसे उसने यह भी देख लिया कि हरसूने उसे देख लिया है। उसे यह जान कर बड़ी चोट पहुँची कि मुझे देखकर भी हरसू चुप बैठा है और बुला नहीं रहा है! एक बार तो उसने यह अवश्य ही सोचा कि मैं ही हरसूके पास चला जाऊं, किन्तु शीघ्र ही न जाने क्यों उसका विचार बदल गया और वह फौरन ताड़ीखानेसे बाहर चला गया।

बकरीदूको ताड़ी खानेसे बाहर जाते हुए हरसूने देखा अवश्य किन्तु उसके दिलकी बात नहीं समझ सका। उसने सोचा—'किसी कारणवश बकरीदू बाहर जा रहा है। अभी उसने ताड़ी भी नहीं पी है इसलिए लौटकर आयेगा अवश्य!

दस—पन्द्रह मिनट बीत जानेपर भी जब बकरीदू नहीं लौटा तब हरसू कुछ परेशान हो गया। उसने ताड़ीसे भरा हुआ कुल्हड़ उसी तरह छोड़ दिया और उठकर बाहर जाने लगा। ठीक उसी समय ताड़ीवाला अपना स्थान छोड़कर हरसू के समीप पहुँच गया और बोला,—'क्यों भैया, कहाँ जा रहे हो? बकरीदू मियाँके पास? तुम्हें देखकर ही तो वह लौट गया है। आखिर है तो मुसलमान ही। तुम्हारे ऊपर विश्वास कैसे कर सकता है! तुम भले ही उसके लिए जान देनेको तैयार हो लेकिन उसके दिलमें मुहब्बत नहीं पैदा हो सकती।'

न तो हरसूको ताड़ीवालेकी बातें अच्छी लगीं, न उसे उसकी बातोंपर विश्वास ही हुआ। उसने उसे कुछ जवाब नहीं दिया और

तेजीसे आगे बढ़कर बाहर हो गया। ऐसे अवसरपर जैसा कि हुआ करता है, ताड़ी वाला हरसूको बाहर जाते देखकर मुस्करा पड़ा।

जिस समय हरसू ताड़ी खानेसे बाहर पहुंचा उसे बकरीदू दिखाई नहीं दिया। दो-तीन मिनट तक वह यह सोचता रहा कि क्या सचमुच मुझे देखकर ही बकरीदू लौट गया है? किन्तु यह विचार जमा नहीं, इसलिए वह तुरन्त तेजीसे आगे बढ़ गया!

जिस समय गलीकी मोड़ पार करने के बाद हरसू आगे बढ़ा, उसी समय बकरीदू नजर आ गया। हरसू तेजीसे उसकी ओर दौड़ा।

हरसूको दौड़ते देखकर, कुछ राह चलते भी न जाने क्या समझ कर, उसके साथ ही बकरीदूकी ओर झपट पड़े। एकसे अधिक लोगोंके दौड़नेकी आहट पाकर बकरीदू रुक गया। उसने घूमकर पीछे देखा। हरसूके साथ और बहुतसे आदमियोंको अपनी ही ओर झपटते देखकर उसका माथा ठनक गया। वह भी फौरन भाग खड़ा हुआ।

उसे भागते देखकर हरसूने चिल्लाकर पुकारा—'बकरीदू, बकरीदू।' किन्तु बकरीदू रुका नहीं। मजबूर होकर हरसूको और तेज़ दौड़ना पड़ा। हरसूको तेज दौड़ते देखकर उसके साथ-साथ दौड़नेवाले अनजान लोग भी तेज दौड़ने लगे। फिर क्या था, राहमें एक खासा हंगामा सा मच गया। बकरीदूसे आगे खड़े लोगोंने उसका रास्ता रोककर उसे पकड़ लिया! बकरीदू पसीने-पसीने हो गया। उसका सारा सरीर जोरसे थर-थराने लगा। मौत आँखोंके सामने नाचने लगी। उसी समय उसकी निगाह दूर सड़कपर खड़े कुछ पुलिस कांस्टेबुलोंपर पड़ी। वह जोरसे चिल्ला उठा—'बचाओ, बचाओ!'

बकरीदू की चिल्लाहट पुलिसके सिपहियोंके कानोंमें पड़ी। उन्होंने अपनी बन्दूकें संभालते हुए भीड़को ललकारा और बकरीदू की सहायता करनेके लिए दौड़ पड़े।

एक ओरसे लाल पगड़ी वाले बकरीदू के पास पहुँचे, दूसरी ओरसे हरसू और उसके साथ दौड़ने वाले लोग उसके पास पहुँचे। पुलिसवालोंको आते देखकर भीड़ फौरन तितर-बितर हो गयी। लेकिन हरसू अपनी जगहपर डटा रहा।

दो-तीन सिपाहियोंने बकरीदू को पकड़ा और दो-तीनने हरसू-को। दोनों टोलियाँ आगे बढ़ गयीं!

मौका देखकर सिपाहियोंने हरसू और बकरीदू दोनोंकी टेंट खाली कर दी और एकको एक ओर खदेड़ दिया तथा दूसरेको दूसरी ओर!

उस समय तो हरसू चुपचाप डेरेपर लौट आया किन्तु शामको मौका देखकर बकरीदू के घरकी ओर चल पड़ा।

बकरीदू घरपर ही था। उसके घरमें हरसूको घुसते देखकर मुहालके कुछ लोग आपसमें कानाफूसी करने लगे। कारण, सुबह-की सारी कहानी बकरीदू ने मुहाल वालोंको सुना दी थी।

अपने घरमें हरसूको उपस्थित देखकर बकरीदू को बड़ा आश्चर्य हुआ! वह आँखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखने लगा। हरसूने कहा,—'क्यों बकरीदू, आखिर आ गये न लोगोंके चक्करमें!'

बकरीदू ने उत्तर नहीं दिया। हरसू कहने लगा,—'तुम्हें फट-कारनेके लिए ही मैं यहाँ तक आया हूँ। दोस्त होकर भी तुम मुझे जलील करनेसे बाज न आये! तुमने कैसे समझ लिया कि मैं भी तुम्हारा दुश्मन हो सकता हूँ?'

हरसू अगर बकरीदू के घरपर उपस्थित न होकर कहीं और इन बातोंको कहता तो सम्भवतः बकरीदू उसकी बातोंपर विश्वास न

करता। उस स्थितिमें अविश्वास करनेका कोई कारण ही नहीं था। उसे कुछ पश्चातापसा हुआ। पुरानी मुहब्बतने जोर मारा। आँखें आपसे आप भर गयीं। उसने कहा,—'मैं अभीतक नहीं समझ सका हूँ कि मैंने क्या किया। जो कुछ मेरे दिमागमें आया, वह कैसे आया, यह मैं खुद नहीं जानता! मुझे माफ करो भैया! मुझे तुमसे कोई गिला नहीं है!'

बकरीदू और हरसू दोनों साथ-साथ ताड़ीखाने पहुंचे। उन्हें एक साथ देखकर ताड़ीवाला हक्का-बक्का हो गया! उसके मुखका रङ्ग उस समय और भी फीका पड़ गया जिस समय उसे देखकर हरसू और बकरीदू, दोनों एक साथ ठहाका मारकर हँस पड़े!

---

# प्रमोद

प्रमोदकी शिकायत यह है कि पड़ोसी रञ्जनका कुत्ता प्रायः रातको भूँकता है। इस कारण न तो वह स्थिर-चित्तसे कुछ पढ़-लिख सकता है, न सो सकता है। फिर अपनी मनोव्यथाको भुलाये कैसे?

रञ्जन प्रमोदकी शिकायतसे परिचित है। वह चाहता है कि उसके पड़ोसीको कष्ट न हो। किन्तु फिर भी वह कोई ऐसा उपाय नहीं करता जिससे प्रमोदकी शिकायत दूर हो जाय। वह यह जानना चाहता है कि कुत्तेके भूँकनेसे प्रमोद परेशान क्यों होता है।

बस यही बात है जिसके कारण न तो प्रमोद रञ्जनसे बोलता है न रञ्जन प्रमोदसे। दोनोंकी इस 'ऐंठ' से मुहालवाले परिचित हैं। किसीकी दृष्टिमें रञ्जन मूर्ख है और किसीकी दृष्टिमें प्रमोद। रञ्जन सोचता है मुहालके लोग मुझे दोषी नहीं समझते और प्रमोद सोचता है पास-पड़ोसवाले जानते हैं कि रञ्जन मुझे जान-बूझकर परेशान करना चाहता है।

बात ही तो ठहरी! बढ़ते-बढ़ते बढ़ गयी। कुछ लोगोंके बीच इस सम्बन्धमें कुछ बातचीत हो रही थी। वहाँ रञ्जन भी उपस्थित

था और प्रमोद भी। न तो एक दूसरेसे बोल रहा था, न दोनोंमेंसे कोई इसकी आवश्यकता ही समझता था। फिर भी बातों ही बातोंमें न जाने दोनों कैसे उलझ गये। अन्य उपस्थित व्यक्ति यदि बीचमें न पड़ते तो शायद झगड़ा बढ़ जाता।

इस घटनासे प्रमोदको कुछ चोट लगी। उसने सोचा—क्या आवश्यकता थी रञ्जनसे उलझने की! मेरे पास आखिर इस बातका प्रमाण ही क्या है कि रञ्जन मेरा शत्रु है। यह अच्छा नहीं हुआ। तो क्या मैं रञ्जनसे मिलूं...?

ठीक ऐसे ही भाव रञ्जनके हृदयमें भी उठे। उसने प्रमोदसे भेंट करनेका निर्णय किया।

रञ्जन घरसे बाहर निकला ही था कि प्रमोद मिल गया। उसे देखकर रञ्जन ठिठककर खड़ा हो गया। उसने एकबार नीचेसे ऊपरतक प्रमोदको देखा। प्रमोद खड़ा था—चुप! रञ्जन न जाने क्या सोचकर उलटे पैरों लौट गया।

और प्रमोद? उसने समझा, रञ्जनने जान बूझकर मेरा अपमान किया है। मैं क्यों मिलूँ उससे! न, मैं नहीं मिलूँगा!

लौट गया प्रमोद भी।

रञ्जन बाहरसे लौटकर घरके अन्दर पहुँचा तो फौरन अपने 'टामी'—उसके कुत्तेका यही नाम था—के पास! वह उसके पास बैठ गया और उसे चुमकारने लगा। कुत्तेने भी दुम हिलानी प्रारम्भ की।

—प्रमोद शायद इसकी ही प्रतीक्षा कर रहा था। बच गया आज टामी! न जाने कैसी चोट पहुँचाता इसे वह! लेकिन—

बस, और कुछ सोच न सका रञ्जन और पुनः कुत्तेको चुमकारने लगा।

रात हो गयी थी। प्रमोद खिन्न था ही। कुत्तेका भूँकना सुनकर

और भी चिढ़ गया। जीमें तो आया कि बस चले तो कुत्तेको गोली मार दें—लेकिन लाचार था, बेबस ! वह चुपचाप अपने कमरेमें टहलने लगा। कुत्तेने भूकना बन्दकर दिया। प्रमोद गलीकी ओर वाली खिड़कीके समीप जाकर रुक गया और बाहरकी ओर देखने लगा। अचानक उसकी आँखें रञ्जनके मकानपर जाकर जम गयीं। न जाने क्यों, घृणासे उसका हृदय भर उठा। उसने फौरन खिड़की बन्द कर दी। ठीक उसी समय कुत्तेने भूँकना आरम्भ किया। प्रमोद कटकर रह गया। उसने कोट पहना और घरसे बाहर निकल गया।

मुश्किलसे प्रमोद दस कदम ही आगे बढ़ पाया था कि रञ्जन मिल गया। प्रमोदने आँखें फेर लीं और आगे बढ़नेके लिए कदम बढ़ाया। कदम बढ़ाया जरूर, लेकिन न जाने क्यों प्रमोद आगे बढ़ न सका।

वह वहीं रुक गया और पीछे से बोल उठा–रञ्जन। रञ्जन रुक गया। उसने घूमकर प्रमोदकी ओर देखा। प्रमोद उसकी ओर देख रहा था। रञ्जन यह सोचने लगा कि प्रमोदने ही आवाज दी है या और किसीने ?

रञ्जनको आगे बढ़ते न देखकर प्रमोद स्वयं ही उसके पास पहुँच गया और बोला—'आखिर तुम मुझसे नाराज क्यों हो रञ्जन ?'

प्रमोदका प्रश्न सुनकर रञ्जन कुछ घबरा-सा गया। उसने कभी यह सोचा भी न था कि प्रमोद उससे इस प्रकार का कोई प्रश्न पूछेगा। परिणामस्वरूप वह उत्तर न दे सका। प्रमोद ही बोला,—'मैं ..कान छोड़ दूँ ?'

'तुम ?'

'हाँ।'

'क्यों ?'

'तुम यही चाहते हो न ?'

'मैं ?'

'हाँ, तुम।'

'किसने कहा तुमसे ?'

'रञ्जन'—कुछ परेशान-सा बोला प्रमोद,—'इस प्रकार मेरा मजाक उड़ानेका तुम्हें क्या हक है ?'

'मैं समझा नहीं'—रञ्जनने किसी प्रकार उत्तर दिया,—'मैं क्यों तुम्हारा मज़ाक उड़ाने लगा। आखिर तुमने मेरा बिगाड़ा ही क्या है! मेरे और तुम्हारे बीच तो कभी बातें भी नहीं होती।'

'रञ्जन...!'

रञ्जन चुप!

'अच्छा, मैं जा रहा हूँ। तुम्हें रोककर गलती की; क्षमा करना!'

रञ्जन कुछ बोले, इसके पूर्व ही प्रमोद वहाँसे चला गया।

घर पहुँचते-पहुँचते रञ्जनको ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है। शायद यही कारण है कि 'टामी'को दुम हिलाते देखकर भी उसने उसे 'प्यार' नहीं किया। वह चुपचाप जाकर अपने कमरेमें लेट गया।

दो घण्टे इसी प्रकार व्यतीत हो गये। इस बीच न जाने कितनी बातें उसने सोच डाली। किसी भी बातसे चित्त हल्का न हुआ। अकस्मात् उसकी निगाहें 'टामी'पर जम गयीं। वह पास ही बैठा था। वह न तो उछल रहा था, न दौड़ रहा था। इससे भी अधिक आश्चर्यकी बात यह थी कि इन दो घण्टोंके बीच वह एक बार भी नहीं भूँका। रञ्जनको कुछ चोट-सी लगी। वह उठकर टामीके पास पहुँच गया और उसे चुमकारने लगा। 'टामी'ने दुम हिलाकर मालिकके प्यारका सहर्ष स्वागत किया।

इधर यह दशा थी और उधर प्रमोदका हृदय ऐसे जल रहा था मानो उसने कोई बड़ा पाप कर डाला हो। जब-जब वह सोचता, तब-तब हृदयपर चोट-सी लगती। वह तिलमिला उठता। उसे प्रतीत होता, मानो कमरेमें रखी हुई एक-एक वस्तु उसका उपहास कर रही हो। हारकर, थककर प्रमोद बैठ गया और उसने आँखें बन्द कर लीं। भावना एक स्थलपर केन्द्रित हो गयी। बन्द पलक-कपाटोंको न जाने कैसे पारकर कल्पना-चित्र पुतलियोंके सामने जा अड़ा। उसने देखा—रज्जन बैठा है। टामी उसके आस-पास, इधर-उधर घूम रहा है। उसकी दुम हिल रही है। रज्जन उसे चुमकार रहा है। सहसा टामीको एक बड़ा पतिंगा दिखायी देता है। वह झपटकर उसके ऊपर टूटता है। पतिंगा उड़ जाता है। उसकी ओर देखकर 'टामी' भूँकने लगता है।

बस; इसके बाद ही प्रमोदकी आँखें खुल गयीं। कल्पना-चित्र लुप्त हो गया फिर भी कुत्तेके भूँकनेकी आवाज उसके कानोंमें गूँजती ही रही। प्रमोद पागल सा हो गया। वह अविलम्ब खिड़की के पास जा पहुँचा। हवाका एक ठंढा झोंका लगा और तब उसे मालूम हुआ जैसे उसका हृदय कुछ हलका हो गया है। वह वहीं खड़ा रहा।

धीरे-धीरे एक घंटा बीत गया। दूसरा घंटा भी यों ही समाप्त हो गया। इस बीच पड़ोसी रज्जनका कुत्ता एकबार भी नहीं भूँका। प्रमोदको कुछ आश्चर्य हुआ! वह सोचने लगा—बात क्या है? कहीं इस अप्रत्याशित घटनामें रज्जनका हाथ तो नहीं है? विश्वास तो नहीं होता कि मेरे प्रति रज्जनके हृदयमें एकाएक प्रेम उमड़ आया हो लेकिन अविश्वास करनेका कारण क्या है? आखिर रज्जन मेरा शत्रु तो है नहीं। वह भी मुझसे पहले कई बार कह चुका है कि तुम मुझे बता दो कि कुत्तेके भूँकनेसे तुम्हें परेशानी

क्यों होती है ? इस बातको सभी जानते हैं। तो क्या मैं इस रहस्यको प्रकट कर दूँ ? हाँ, अब इसे छिपाना अच्छा नहीं। लोग हँसी ही न उड़ायेंगे! उड़ा लें, बला से! दो-चार दिनमें आप ही चुप हो जायँगे।

प्रमोदका चित्त स्थिर हुआ, परेशानी मिटी और वह सो गया।

दूसरे दिन सूरज निकलनेसे पहले ही प्रमोद रञ्जनके घरके दरवाजेपर जा पहुँचा। वह दरवाजेके अन्दर पैर रखने ही वाला था कि उसे याद आया कि रञ्जन तो काफी दिन चढ़नेतक सोता रहता है। वह लौटने लगा। सहसा उसकी दृष्टि सामने आँगनमें घूमनेवाले 'टामी'पर जा पड़ी। प्रमोद एकटक उसकी ओर देखने लगा। 'टामी' ने भी प्रमोदको देख लिया। कुछ देर तक तो वह चुप रहा किन्तु बादमें उसने भूँकना प्रारम्भ किया। प्रमोदको न जाने क्या सूझा। उसने झपटकर गलीमें पड़ा पत्थरका टुकड़ा उठाया और निशाना साधकर टामीकी ओर फेंका। निश्चय था कि वह पत्थरका टुकड़ा टामीको चोट पहुँचाता किन्तु ठीक समयपर न जाने कहाँसे बीचमें रञ्जन आ टपका और वह टुकड़ा 'टामी' को न लगकर रञ्जनको लगा। यह दृश्य देखकर प्रमोद हक्का-बक्का रह गया। वह कुछ सोच सके इसके पहले ही उसके समीप रञ्जन पहुंच गया और घृणासे उसकी ओर देखते हुए बोला—'तो अब मेरा बदला निरीह जानवरसे चुकाना चाहते हो ?'

प्रमोद धीरेसे बोला,—'मुझसे गलती हुई, क्षमा करो रञ्जन।'

'हूँ, देख लिया है न! इसलिए भोले बन रहे हो।' रञ्जनने कहा,—'मैं तो उसी दिन समझ गया था कि तुम टामीको अपने क्रोधका शिकार बनाना चाहते हो जिस दिन तुम मुझे यहाँ मिले थे।'

'मैं सच कहता हूँ रञ्जन, मेरा इरादा यह कभी नहीं था।'

'हाँ, मैं भी यही समझता था',—कुछ शान्त होकर रञ्जन बोला।—'और यह समझता था कि मेरे प्रति तुम्हारे हृदयमें मैल नहीं है। किसी कारणवश कुत्तके भूँकनेसे तुम्हें परेशानी होती है। कुत्ता मेरा है इसलिए तुम मुझसे रुष्ट रहते हो। इससे अधिक उस दिनसे पहले मैंने तुम्हारे बारेमें कभी कुछ नहीं सोचा था। पिछली रातके व्यवहारने इस शंकाको भी मिटा दिया था। किन्तु देखता हूँ, वह भूल थी। सचमुच तुम उतने साफ़ नहीं, जितना मैं समझता था।'

'रञ्जन,' प्रमोदने उत्तर दिया,—'तुम चाहे जो सोचो किन्तु सच बात कुछ और ही है।'

कुछ तपाकसे रञ्जन बोला,—'सुन सकता हूँ वह बात क्या है?'

'हाँ, लेकिन यहाँ नहीं! कहीं बैठना होगा।'

रञ्जनकी इच्छा तो नहीं थी किन्तु फिर भी वह प्रमोदको घरके अन्दर ले गया। प्रमोदने वहाँ रञ्जनको रातकी सारी कहानी सुना दी।

प्रमोदकी कहानी सुनकर रञ्जन कुछ बोला नहीं। वह निर्णय न कर सका कि प्रमोदने जो कुछ कहा है, वह गलत है या सही। अन्तमें वह बोला,—'मैं नहीं कह सकता कि तुमने जो कुछ कहा है, वह झूठ है या सच! लेकिन......।'

'सुनो,' बीचमें ही प्रमोद बोल उठा,—'तुम चाहे जो कुछ समझो,—मुझे अब इसकी कोई विशेष चिन्ता नहीं है। हाँ, मैं इतना जरूर चाहता हूँ कि इससे पूर्व कि मैं यहाँसे जाऊँ, मैं वह रहस्य प्रकट कर दूँ जिसके कारण मुझे तुम्हारे कुत्तेका भूँकना अच्छा नहीं लगता।'

प्रमोद चुप हो गया। रञ्जनने भी कुछ नहीं कहा। दोनों ही चुप बैठे रहे। रञ्जन उत्सुक था; प्रमोद दुःखी। अंतमें प्रमोदने

ही शान्ति भंग की। वह बोला,—'मेरी बातोंपर विश्वास करोगे ?'

'वचन नहीं दे सकता।'

'रञ्जन...!'

'मुझपर विश्वास करो रञ्जन, तुम नहीं समझ सकते कि आजकी घटनासे मुझे कितनी चोट पहुँची है। आज तक मैं यह अवश्य समझता रहा कि तुम जान बूझकर मुझे परेशान करते हो किन्तु साथ ही मैं यह भी समझता रहा कि कमसे कम मुझसे तुम्हें कोई शिकायत नहीं है।'

'मैं तुम्हारी बातोंका तात्पर्य नहीं समझ सका।'

'मैं यही कहना चाहता हूँ कि तुम मुझे कुछ कुछ खब्ती समझते रहे।'

प्रमोदकी बातें सुनकर रञ्जन चौंक-सा उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई भूली हुई बात याद आ गयी है। वह आँखें फाड़-फाड़कर प्रमोदकी ओर देखने लगा। प्रमोद बोला,—'जो कुछ मैंने कहा है, उसे तुम स्वीकार करते हो न ?'

रञ्जनने धीरेसे उत्तर दिया,—'हाँ। लेकिन तुम्हें यह ज्ञात कैसे हुआ ?'

'यह मैं स्वयं नहीं जानता' उत्तर देते हुए प्रमोदने कहा,—'अब मैं तुमसे वचन न लूँगा। मेरा दिल कहता है कि इच्छा रहते हुए भी तुम मेरी बातोंको झूठ नहीं समझ सकते।'

कुछ मिनटों तक चुप रहनेके बाद प्रमोदने कहना प्रारम्भ किया,—आजसे छः माह पूर्वकी बात है। शायद तब कुत्ता रखे तुम्हें अधिक दिन नहीं हुए थे। एक दिनकी बात है। बीमार पत्नीके लिए दवा लेकर मैं घर आ रहा था। तुम्हारा कुत्ता दरवाजेके बाहर खड़ा था। मैं घरके समीप पहुँचा ही था कि मुझे देखकर तुम्हारा कुत्ता भूँकने लगा। उसके एकाएक भूँकनेसे मैं चौंक सा गया।

यह स्वाभाविक भी था; क्योंकि उन दिनों चौबीस घंटे मुझे अपनी पत्नीका ही ध्यान रहता था। चौंकनेके कारण दवाकी शीशी मेरे हाथसे छूटकर जमीनपर गिर पड़ी और चूर-चूर हो गयी।

'दवा कीमती थी। उसे पुनः खरीदनेके लिए उस समय मेरे पास पैसे नहीं थे। फिर भी दवा लाना तो आवश्यक था ही। मैं फौरन रुपये प्राप्त करनेके लिए, मृत्युकी प्रतीक्षा करनेवाली पत्नीको बिना देखे ही, बाजार चला गया। दुर्भाग्यसे देर अधिक हो गयी। जिस समय दोबारा दवा लेकर लौटा, उस समय पत्नीकी हालत काफी बिगड़ चुकी थी। उसी रातको...

बोलते बोलते प्रमोदका कंठ रुद्ध हो गया। कुछ रुककर उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—'उसी दिनसे मुझे कुत्तेसे कुछ चिढ़-सी है। ऐसा क्यों हुआ, इसे मैं स्वयं ही नहीं जानता। जब यह भूँकता है, तभी बीमार पत्नीकी सूरत मेरी आँखोंके सामने नाचने लगती है और यह बात याद आती है कि इसीके भूकनेके कारण दवाकी शीशी टूट गयी थी और....।'

इसके आगे प्रमोद बोल न सका। कंठ पूरी तरह भर आया। बड़ी कठिनाईसे केवल वह इतना और कह सका—'अच्छा अब जा रहा हूँ रज्जन। आज ही इस शहरसे बाहर चला जाऊँगा। हो सके तो गलती क्षमा करना।'

प्रमोदके खड़े होते ही रज्जन भी खड़ा हो गया।

प्रमोद जा रहा था, रज्जन साश्रु नयनोंसे उसे देख रहा था और टामी अपनी दुम हिलाते हुए रज्जनका पैर चाट रहा था। रज्जन सोच रहा था—'इस समय उसका हृदय भरा हुआ है। बात करना ठीक न होगा। फिर मिल लूँगा। लेकिन....

---

# परिहार

अन्धकार ही उस गलीकी विशेषता है। गलीकी मोड़के समीप पूरब दिशावाली पत्थरकी पुरानी दीवारपर लगे म्युनिसिपल लैम्पके जलते रहनेपर भी इधर-उधर घूमने वाले लावारिस कुत्तोंसे बहुधा उस गलीसे गुजरनेवाले राहगीरोंकी मुठभेड़ हो जाया करती है।

उस गलीमें एक छोटासी दुकान है। बंशी उस दूकानका मालिक है। इधर-उधर बिखरे हुए लोहेके कुछ औजार, पुराने और सड़े हुए चमड़ेकी धौंकनी और लोहेके छोटे-छोटे टुकड़ोंका ढेर तथा ढेरके समीप घुटनोंको छातीसे चिपकाकर पैरोंके सहारे बैठा हुआ बंशी—यही उस दूकानका पूरा चित्र है।

बंशीका स्वभाव बुरा नहीं, किन्तु उसकी एक आदत बड़ी खराब है। रातको काम करनेके बाद वह दारू पीता है। पास-पड़ोसके लोग दारू पीनेसे उत्पन्न होनेवाली बुराइयोंकी ओर कई बार उसका ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं। कुछ समयके लिए बंशीने दारू पीना छोड़ भी दिया था, किन्तु अब पुनः वह पीने लगा है।

एक दिन राजनने बंशीको पकड़ लिया और दारू पीनेके लिए न जाने दिया। बंशीने भी न जाने क्यों, कोई आपत्ति नहीं प्रकट की। चुपचाप उसकी बात मान ली। राजनने उससे पूछा,—'तुम शराब क्यों पीते हो?'

'आदत पड़ गयी है भैया,'—बंशीने उत्तर दिया,—'मैं दारू पीना छोड़ सकता हूँ, यदि वह कम्बख्त मेरा पीछा छोड़ दे।'

'वह कौन?'—उत्सुकतासे राजनने पूछा।

'अरे वही रमिया भैया, उस दिन शामको जो गुलगपाड़ा मचा रही थी।'

'वह कौन है तुम्हारी?'

'मेरी क्या लगती है चुड़ैल। वह भी पीती है भैया।'

बंशीकी बातें सुनकर राजन आँखें फाड़-फाड़कर उसकी ओर देखने लगा और बोला,—'जब तुम्हारा उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, तब वह तुम्हारे पास आती है क्यों?'

कुछ झेंपते हुए बंशीने कहा,—'छ मास पूर्व दारूखानेसे मैं उसे भगाकर लाया था। उस समय मैं पीता नहीं था। कल्लूने उसके साथ मेरी भेंट करा दी थी।'

'तुम्हें शराबकी लत कैसे लगी?'

'रमियाके कारण ही, और कैसे! शुरू-शुरूमें इसके लिए मुझे रोज दारू खरीदनी पड़ती थी। आनेके दो ही दिन बाद उसने मुझसे कहा था,—'अगर तुम दारू नहीं लाओगे, तो मैं तुम्हें बदनाम कर दूँगी।' वह दूरकी रहने वाली है। जिस दिन कल्लूने मुझे उससे मिलाया था, उससे एक दिन पहले ही कल्लूने उसे दारूखानेमें टिकाया था। इज्जत-आबरूका डर सबको होता है भैया। पाप तो मैं कर ही चुका था, उसकी बात टालनेका साहस न हुआ। उस

दिनसे मैं रोज उसके लिए दारू खरीदने लगा। चुड़ैलने धीरे-धीरे मुझे भी पीना सिखा दिया।'

बंशीके चुप हो जानेपर राजनने कहा,—'अब तो पास-पड़ोसके लोग उससे अच्छी तरह परिचित हो गये होंगे?'

'नहीं भैया,'—बंशीने उत्तर दिया,—'छँटी हुई है। दिनको नहीं पीती, रातको पीती है। दिनमें गलीवालोंसे हिली-मिली रहती है। कभी किसीके लड़केको बहला कर उसका रोना बन्द कर देती है, कभी बाजारसे किसीका सौदा ला देती है और कभी किसीके घरके काममें हाथ बँटा देती है। क्या मजाल जो खुलकर कोई कुछ कह दे। सब मुझे ही कोसते हैं।'

'अजीब कहानी है।'—कहकर राजन जब चुप हो गया, तब बंशी बोला,—'अच्छा अब जा रहा हूँ भैया।'

× × ×

'लो...।'

'मैं नहीं लूंगा।'

'क्यों?'

'घृणा हो गयी है।'

'वाहरे भगत! यह ढोंग कब से सूझा?'

'ढोंग नहीं रमिया, सच कहता हूँ।'—पुरानी और लचर चारपाईपर बिछे हुए गंदे बिछौनेपर लेटते हुए बंशीने कहा,—'रह-रहकर कोई चीज मेरे दिलको कुरेद देती है। जिस घड़ी राजन भैयासे भेट हुई थी, उस घड़ीसे न जाने क्या हो गया है। बोलनेको तो मैं बराबर बोलता रहा, लेकिन एक मिनट भी ऐसा नहीं बीता जिसमें मुझे अपने पर ग्लानि न हुई हो।'

हाथमें पकड़ा हुआ मिट्टीका कुल्हड़ जमीनपर रखकर रमिया बोली,—'यह राजन कौन है?'

'चौधरी साहबका लड़का।'

'कौन चौधरी साहब?'

'कौन चौधरी साहब बताऊँ,'—खीजकर बंशी बोला,—'तू जानती भी है किसीको?'

बंशीके चुप होते ही रमिया बोल उठी—'क्या कहता था चौधरी साहबका लड़का?'

बंशीके विचारोंकी गतिको रमियाकी बदलती हुई आवाजने रोक दिया। छतकी ओर देखनेवाले बंशीने गरदन घुमाकर रमियाकी ओर देखा। वह एकटक उसकी ओर देख रही थी। बंशी न जाने क्यों सहम गया। रमिया बोली—'मैं सब समझ गयी। तुमने जरूर मेरी बुराई की होगी।'

'वाहरी, तू तो हमेशा लड़नेके लिए ही यार रहती है!' सफाई देते हुए बंशीने कहा,—'मैं तेरी बुराई क्यों करने लगा। और वह तो मुझसे कह रहा था—'दारू पीना बुरा है। तुम्हारे शरीरकी हालत क्या हो गयी है, देखते नहीं। मैंने तेरे बारेमें कुछ कहा हो तो कसम ले ले।'

'हाँ हाँ, बड़े सीधे हो न तुम,' रमियाने दूसरा वार किया,—'दारू न पीनेके लिए पहले भी बहुत लोग कह चुके हैं। आज ही क्यों 'बैराग' सूझा है?'

राजनकी बातोंमें आत्मीयताका पुट था। और लोगोंने 'दुनियादारीका' निर्वाह किया था। लेकिन अपढ़ और गँवार बंशीके लिए दोनोंका अन्तर समझना असम्भव था। वह रमियाके प्रश्नका उत्तर न दे सका।

× × ×

उस दिन रमियाने बंशीसे फिर कुछ नहीं कहा, उसने अपना काम किया और सो गयी।

दूसरे दिन उसने जबतक सूरज न डूबा, किसी प्रकार यह प्रकट न होने दिया कि बंशीसे मुझे शिकायत है। रातको जब बंशी दूकानसे लौटा तब नित्यकी भाँति रमियाने उससे दारू लानेको कहा। बंशीने उससे साफ-साफ कह दिया कि 'अब कुछ भी हो जाय किन्तु मैं दारू न लाऊँगा।' रमिया भी थी एक ही। वह बंशीकी दुर्बलताको भलीभाँति पहचान चुकी थी। उसने भी कुछ न कहा और चद्दर ओढ़कर घरसे बाहर जानेको तैयार हो गयी। बंशी पहले तो चुप रहा, किन्तु जब रमियाने सचमुच अपना पैर दरवाजेके बाहर रख दिया, तब उससे चुप न रह गया। उसने कहा—'कहाँ जा रही है तू?'

'दारू लेने।'

'क्या कहती है तू! रमिया, क्या सचमुच तू पागल हो गयी है?'

रमियाने सुनकर कहा,—'पागल न होती तो तुम्हारे साथ कैसे आती। मैं सब समझती हूँ। किसी और को पकड़ लिया होगा तुमने।'

रमियाकी बातें सुनकर बंशीको अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई। वह सोचने लगा—किस अशुभ घड़ीमें मिला था चुड़ैलसे। चाल-चलन तो ऐसी—और दिमाग आसमानपर चढ़ा है! हूँ...जाती है जाय! बदनामी ही होगी न, सह लूँगा उसे भी। इस चुड़ैलसे तो पिंड छूट जायगा।

बंशीको चुप देखकर रमियाने समझा, अब दाल न गलेगी। वह चली गयी।

उसे घर छोड़े पाँच मिनट भी न व्यतीत हुए होंगे कि बंशीके पड़ोसी रामू कुम्हार, सुक्खू तेली, रघुआ मोची और पत्तन ग्वाला, उसकी कोठरीमें आ धमके। बंशी कुछ समझ न सका। वह आँखें

फाड़-फाड़ कर उन लोगोंकी ओर देखने लगा। सबसे पहले रघुआ ही बोला। उसने कहा—'क्यों बंशी, क्या मर्जी है तुम्हारी। रहना चाहते हो कि नहीं इस गलीमें ?'

कुछ सकपकाकर बंशीने कहा—'क्या बात है भैया !'

रामू कुम्हारने तत्काल ही कहा—'तुमने रमियाको मारा क्यों ? औरतोंपर कोई हाथ उठाता है !'

कुछ परेशान सा बंशी बोला—'तुम कहते हो क्या ! कौन कहता है कि मैंने रमियाको मारा है ?'

'अरे वाहरे भगत',—सुक्खू तेली बोला,—'कैसे भोले हो तुम !'

'अरे ज्यादा पी ली होगी भैया,'—बंशीसे पूर्व पत्तन ग्वाला ही बोल उठा,—'नशेकी बात भी किसीको याद रहती है क्या !'

बंशीको ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसे तंग करनेके लिए कोई तिकड़म रचा गया हो, यद्यपि बात यह नहीं थी। उसके पड़ोसियोंने तो अपनी अपनी 'घरवाली'की बातोंपर विश्वास करके ही बंशीके साथ ऐसा व्यवहार किया था।

बंशीको चुप देखकर सुक्खू तेलीने कहा,—'तुमसे तो कई बार कह चुका हूँ बंशी कि दारू पीना छोड़ दो। लेकिन तुम हो कि एक भी नहीं लगती।'

बंशीको बात करना कुछ अच्छा न लगा। अनायास ही उसके मुँहसे निकल गया,—'ठीक कहते हो भैया, अब कभी न पीऊँगा।'

'और क्या,'—रामू कुम्हार बोला,—'दारू भी कोई अच्छी चीज है ?'

बंशी सिर झुकाकर चुप बैठा रहा। उसके पड़ोसी चले गये।

× × ×

बंशीके हाथमें दारू देखकर रमियाकी बाछें खिल गयीं। वह चट्से उठकर उसके पास पहुंच गयी। बंशीने चुपचाप दारूकी बोतल उसे पकड़ा दी।

रमियाने बोतल उसके हाथसे ले ली और एक ओर रख दी। बोली वह,—'सच कहती हूँ, कल रातभर मैं जागती ही रह गयी थी।'

फीकी हँसी हँसते हुए बंशी बोला—'मेरी भी यही दशा थी।'

'सच!'

'हाँ।'

'क्या सोचते रहे तुम?'

'मैं······।' बंशी इस प्रकार उत्तर देनेके लिए प्रस्तुत नहीं था।

उसके चुप हो जानेपर रमियाने कहा—'क्या सोच रहे हो?'

'मैं?'

'हाँ, हाँ, तुमसे ही पूछ रही हूँ।'

'मैं यह सोच रहा हूँ कि तेरा घर कहाँ है?'

'मेरा?'

'हाँ, हाँ, तेरा।'

'क्यों?'

कुछ गम्भीर स्वरमें बंशीने कहा—'तू कितनी बेशर्म है रमिया! एक तो औरत होकर शराब पीती है और दूसरे······'

बंशी आगे न बोल सका। रमिया बीचमें ही बोल उठी—'और तुम बहुत अच्छे हो न! मुझे अपने साथ लाते समय तुम तो मरे जा रहे थे!'

'रमिया···!'

'हाँ, हाँ, अब क्यों न आँखें दिखाओगे! घरमें लाकर बसा जो लिया है!'

रमियाकी बातें सुनकर वंशी कटकर रह गया। उसने उत्तर नहीं दिया और चुपचाप जाकर चारपायीपर लेट गया।

रमियाने भी कुछ न कहा। उसने दारू भी नहीं ली। चुपचाप जाकर लेट गयी। अतीतका चित्र उसकी आँखोंमें सामने घूमने लगा—रमिया चमारकी लड़की है। उसका बाप दारू पीता है। वह जिस समय सात वर्षकी थी, उसी समय उसने छिप-छिपकर दारू पीना आरम्भ कर दिया। यह बात उसके पिताको मालूम हो गयी, फिर भी उसने उसे दारू पीनेसे मना नहीं किया। माँने भी नहीं मना किया। सच बात तो यह थी कि उसके पास-पड़ोसके अन्य सभी लोग दारू पीते थे। लड़के, बच्चे, औरतें सभी। शायद कोई भी दारू पीना बुरा न समझता था।

दस वर्षकी उमरमें उसकी शादी हो गयी। उसका पति बहुत खराब था। शादी के बाद तीन-चार वर्ष बीत गये—रमियासे उसकी एक दिन भी नहीं पटी। लेकिन रमियाको इससे कोई कष्ट न हुआ। उस बस्तीका वातावरण ही कुछ ऐसा था।

कुछ दिनोंके बाद पड़ोसके ही एक चमारके छोकरेसे न जाने रमियाकी क्या बातचीत हुई कि वह उसके साथ वंशीके शहरमें आ गयी। लेकिन दोनोंमें अधिक दिनों तक पटी नहीं। वह चला गया और रमिया रह गयी निराश्रिता।

उसके चले जानेसे रमियाको दुःख हुआ। इसलिए नहीं कि उसकी उपस्थितिको वह आवश्यक समझती थी किंतु इसलिए कि इस अनजान शहरमें उसे कोई जानता न था और वह समझ नहीं पा रही थी कि अपना जीवन कैसे व्यतीत करें।

दारूकी लत छूटी नहीं थी। दो दिन तो किसी भाँति व्यतीत हो गये, किन्तु तीसरे दिन रमिया दारूखानेके पास पहुंच गयी। वहीं उसकी भेंट शहरके प्रसिद्ध बदमाश कल्लूसे हुई। आश्रय और

दारूकी लालचके कारण रमियाको कल्लूके चक्करमें फंसते देर न लगी।

कुछ दिनों तक तो रमिया अवश्य कल्लूके साथ रही, परन्तु शीघ्र ही कल्लूने भी उसका साथ छोड़ दिया और उसे बंशीके हवाले कर दिया।

बंशीको कोई सन्तान न थी। अवस्था भी अधिक ठहरी। आमदनीका कोई हिसाब नहीं। दूसरी शादी असम्भव थी। ऐसी अवस्थामें बंशीसे रमियाका सम्बन्ध हो जाना स्वाभाविक था।

× × ×

रातको बंशी घर लौटा तो उसने देखा कि रमिया सो रही है। उसने उसे उठाया और बोला—'क्या सोच रही है कलसे तू?'

'कुछ तो नहीं।'—कहकर रमियाने जम्हाई ली और उठकर दूसरी ओर चली गयी। बंशी भी फिर नहीं बोला। लेकिन चुप भी अधिक देर तक न रहा। वह शीघ्र ही रमियाके पास जा पहुँचा और बोला—'यदि दारू न पीनेसे तुझे दुःख होता है, तो दारू मत छोड़। मुझे क्या…'

न जाने क्यों रमिया कह बैठी—'अब मैं दारू नहीं पीऊँगी।'

'क्यों?'

'लायेगा कौन?'

'क्या मतलब?'

रमिया बोली नहीं। भरी हुई आँखोंसे बंशीकी ओर देखन लगी। बंशी बोला—'तू रोती क्यों है रमिया?'

रमिया बोली—'तुम मुझे छोड़ तो न दोगे?'

बंशी कुछ समझ न सका। हक्का-बक्का-सा उसकी ओर देखता रहा। रमियाने ही वार्त्ता प्रारम्भ की—'मैं सच कहती हूँ, अब मैं

दारू न पीऊँगी। लेकिन तुम मुझे छोड़ना मत। मैंने बहुत मुसीबत झेली है। अब अधिक कष्ट न सह सकूँगी।'

कुछ घबराकर रमियासे बंशीने कहा—'तुझे हो क्या गया है! आज कैसी बातें कह रही है तू!'

बंशीकी बात सुनकर न जाने क्यों रमिया फूट-फूटकर रोने लगी और उसी आवेशमें उसने अपनी कहानी बंशीको सुना दी।

रमियाने जो कुछ कहा, बंशीने मौन रहकर एक-एक अक्षर सुना। रमिया चमारकी लड़की है, यह जानकर उसे बहुत दुःख हुआ। उसका माथा घूमने लगा। वह जाकर चारपाईपर लेट गया और आँखें बन्द कर लीं। एक···दो···तीन···क्रमशः चार घण्टे बीत गये, किन्तु बंशीकी आँखें न लगीं। वह चारपायीसे उठ बैठा और चारों ओर देखने लगा। रमिया पास ही एक कोनेमें बैठी थी। बंशी वहाँ जा पहुंचा। उसे देखकर रमिया सकपका गयी। उसके आगे मिट्टीका कुल्हड़ पड़ा था और उसमें दारू भरी थी। बंशी एकाएक आगबबूला हो गया। उसने कसकर रमियाको एक लात जमायी। रमिया चिल्लाये, इसके पूर्व ही वह उसकी छातीपर चढ़ बैठा और अपने दोनों हाथोंसे उसकी गर्दन पकड़कर अपनी पूरी शक्तिके साथ उसका गला दबाने लगा। रमियाकी घिग्घी बंध गयी, आँखें उलटने लगीं, फिर भी बंशी चेता नहीं। कुछ ही देरमें रमिया बेहोश-सी हो गयी।

चेतनाहीन रमियाको दो लात मारकर बंशीने दारूकी बोतल उठा ली और एक ही साँसमें उसने बोतल खाली कर दी।

× × ×

उस रात बंशीने शहर छोड़नेका पक्का निश्चय कर लिया था, किन्तु वह ऐसा न कर सका। उसने सोचा, रमिया होशमें आनेके

बाद अवश्य थानेपर पहुंचकर उसकी शिकायत कर देगी और...
इसके बाद बंशी कुछ न सोच सका।

नशेके कारण उसकी बुरी हालत हो गयी थी। वह भी नशेमें वेहोश होकर रमियाके पास ही गिर पड़ा।

प्रातःकाल जब बंशीकी आँखें खुलीं, रमिया वहाँ नहीं थी। उसे अपने पास न देखकर बंशी एकदम घबरा गया। वह दिनभर उसे ढूँढ़ता रहा, किन्तु उसका पता न लगा। हारकर वह घर आकर पड़ रहा। उसे नींद न आयी। दशा पागलों सी हो गयी। वह उठकर दारूकी दूकानपर चला गया। वहाँ उसने एक बोतल दारू खरीदी और उसे लेकर घर लौटने लगा।

बंशीने अपना पैर दारूकी दूकानके बाहर रखा ही था कि उसकी दृष्टि रमियापर पड़ी। वह एक ओर बैठकर दारू पी रही थी। वह दौड़कर उसके पास पहुंचा। रमिया बंशीको देखकर चिहुंक उठी। बंशी कुछ बोले, इसके पूर्व ही रमिया वहाँसे उठकर तेजीसे बगलवाली गलीमें भाग गयी। बंशी मारे क्रोधके कांपने लगा। उसकी आँखें उस ओर ही जमी रहीं, जिस ओर रमिया भागी थी। उसी मुद्रामें उसने आँखें घुमाकर एक बार रमियाके जूठे कुल्हड़की ओर देखा। दूसरे ही क्षण उसने पैरसे ठोकर मारकर उसे चूर चूर कर दिया और वहीं खड़े-खड़े उसने दारूकी पूरी बोतल खाली कर दी और घर लौट आया।

× × ×

इस बातको काफी दिन बीत चुके हैं। उस दिनके बाद बंशीको रमिया कहीं नहीं दिखायी पड़ी, किन्तु वह उसे एक दिनके लिए भी नहीं भूला। उसकी स्मृति उसे अच्छी न लगी। उसे भूल जानेके

लिए वह खूब दारू पीने लगा। अब भी पीता है, क्योंकि रमियाकी स्मृति अब भी ताजी बनी हुई है। बंशीका विश्वास है कि जिस दिन वह रमियाको भूल जायगा, उस दिन वह दारू पीना अवश्य छोड़ देगा।

---

## बकरीकी चोरी

•••और जब भीखू चला गया तब बूढ़े मंगरूने बड़बड़ाना शुरू किया —'नवाब बनकर आया था। बकरियाँ मेरी हैं। जिसे चाहूँगा उसे दूध दूँगा किसीका कर्जदार हूँ क्या। समझता क्या है वह अपने को।'

लोगोंकी धारणा है कि मंगरू कुछ सनकी है। खुश हो जायगा तो अपनेको लुटा देगा, नहीं तो जरा सी बातपर ऐसे बिगड़ जायगा मानो अपने पक्के शत्रुसे बात कर रहा हो!

मंगरू सचमुच सनकी है या नहीं, यह तो नहीं मालूम, लेकिन कुछ तर्रार अवश्य है। उसे अपनी ईमानदारीपर नाज है। कोई गलत तरीकेसे उसे दबा नहीं सकता। गंवार भीखू इस बातको जानता न था। उसने सोचा कि मैं पुलिस जमादारका मित्र हूँ और जब यह बात मंगरूको मालूम हो जायगी, तब वह मुझे इस समय भी दूध दे देगा। लेकिन उसकी धारणा गलत निकली। भीखूपर उसकी बातोंका अच्छा प्रभाव न पड़ा। पुलिस जमा-

दारका नाम सुनते ही वह झल्ला उठा और उसने दूध देनेसे साफ इनकार कर दिया।

मंगरूका पड़ोसी जोखन समीप खड़ा होकर भीखू और मंगरू-की बातें सुन रहा था। जब भीखू चला गया तब जोखनने मंगरूके पास जाकर कहा,—'दादा, तुम भी कैसे आदमी हो। जरा सी बात-पर बिगड़ गये। मालूम नहीं कमबख्त कैसी उलटी-सीधी बातोंसे जमादारके कान भरेगा।'

"हूँ!" झकझक कर मंगरू बोला,—'कहता क्या है रे जोखन! मैंने जमादारकी रकम मारी है क्या? क्यों देता दूध उसे! बकरियां मेरी हैं या जमादारकी?'

जोखन, मगरूके स्वभावसे भलीभाँति परिचित था। वह जानता था कि मंगरूको डराकर उससे कोई काम नहीं कराया जा सकता। इसलिए उसने मंगरूकी बातोंका उत्तर नहीं दिया और चला गया।

एक तरफ यह हाल था दूसरी ओर भीखूने घर पहुँचते-पहुँचते यह निर्णय कर लिया कि जैसे भी होगा मैं उस पाजीको बड़े घर जरूर भेजूँगा। मनमें यह धारणा उत्पन्न होते ही उसे यह विश्वास भी हो गया कि मुझे सफलता मिलनेमें कोई दिक्कत न होगी। उसका सोचना भी ठीक था।

भीखू है छटा हुआ बदमाश। डरा-धमकाकर लोगोंसे पैसे ऐंठना उसका काम है। वह हलकेके पुलिस जमादारको नियमित रूपसे एक चिलम गाँजा पिला देता है और कुछ खिलापिला देता है। पास-पड़ोसमें कोई वैसा चलता-पुरजा नहीं है। अधिकतर लोग गरीब और फटेहाल हैं। इसलिए उसका दबदबा बना हुआ है। किसीने अगर कभी सिर उठानेकी कोशिश भी की तो उसे या तो जमादारको पूजना पड़ा, या बड़ेघरका मुँह देखना पड़ा।

शामको जब पुलिस जमादार भीखूके पास पहुँचा तब भीखूने उसकी ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा,—'उस्ताद एक शिकार फँसाओ तब समझूँ कि तुम भी कुछ हो।'

अपनी आदतके अनुसार, भीखूकी चारपाईपर बैठते हुए जमादार बोला,—'क्यों रे भिखुआ, क्या बात है ? किसीसे लग गयी है क्या ?'

भीखूने जवाब दिया,—'लग तो ऐसी गयी है कि सुनोगे तो तबीयत मान जायगी'

"सच ?"

'नहीं तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ !'

'अच्छा बता, क्या बात है ?'

गाँजेकी चिलम उठाते हुए भीखूने कहा,—'जल्दी क्या है, बतादूँगा। जरा 'दम' तो लगा लो।'

भीखूने उक्त बातें यह समझ कर कहीं थी कि जैसे-जैसे देर होती जायगी वैसे-वैसे जमादारकी अधीरता बढ़ती जायगी। उस स्थितिमें मेरी बातें अधिक प्रभावशाली सिद्ध होंगी। किन्तु उसकी मनोकामना पूरी न हुई। जमादारने अधीरता नहीं दिखलायी। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि जमादार जानता था कि भीखू जब उलझता है, किसी पकौड़ीवाले या रेवड़ीवालेसे ही उलझता है। किसी मोटे असामीकी ओर आँख उठाकर उसने कभी नहीं देखा।

भीखूने जब यह देखा कि गाँजा पी लेनेके बाद भी जमादारने कुछ नहीं पूछा, तब उसे बड़ा क्रोध चढ़ा। लेकिन उसने अपना क्रोध प्रकट नहीं किया। कुछ समय व्यतीत करनेकी गरजसे वह उठकर बाहर चला गया और जमादारसे यह कहता गया कि 'पान लाने जा रहा हूँ, खाकर तब जाना।'

पाँच मिनटके बाद ही भीखू लौट आया। एक गिलौरी उसने जमादारको दी और एक आप खायी। फिर सुर्तीको जमादारकी हथेलीपर रखते हुए बोला, 'मंगरूका दिमाग आजकल बहुत चढ़ा हुआ है। किसीको कुछ समझता ही नहीं है। आजकी ही बात है। दोपहरको मुझे जरासे बकरीके दूधकी आवश्यकता थी, इसलिए मैं उसके पास गया। यह समझकर कि मेरे कहनेसे शायद उस समय दूध देना मंगरू स्वीकार न करे, मैंने उससे कहा कि जरा-दूध दे दो, जमादार साहबको जरूरत है। बस, मेरा इतना कहना था कि वह आग हो गया और बोला,—'जमादार साहबका कर्ज-दार हूँ क्या? नहीं देता दूध। चले जाओ यहाँसे।' मैंने उसे बहुत समझाया। आरजू-मिन्नत भी की लेकिन उसपर कोई असर न हुआ। जबतक मैं वहाँ रहा, तबतक वह तुमको कोसता ही रहा।''

भीखूकी बातोंने जमादारपर तत्काल प्रभाव डाला। पुलिस जमा-दार ही तो! उसने कहा,—'यह बात है! अच्छा देखा जायगा।'

किसी बातको रोते रहना मंगरूके स्वभावके विरुद्ध है। दोपहर-की घटनाको शाम होते-होते वह भूल गया। लेकिन जोखन चुप नहीं रहा। उसने पास पड़ोसके लोगोंको भी मंगरू और भीखूके बीच होनेवाली कचकचसे परिचित करा दिया। परिणाम यह हुआ कि बात काफी दूर तक फैल गयी। कुछ लोग जमादारको कोसने लगे और कुछ मंगरूको। जमादारको जो लोग बुरा-भला कहते थे वे उसकी शरारतसे परेशान थे और चाहते थे कि उसकी तानाशाही किसी प्रकार बंद हो जाय। मंगरूको सुनानेवाले लोग जरा कच्चे थे। वे नहीं चाहते थे कि जरा सी बातके लिए जमादारको नाराज किया जाय।

मंगरू और जमादारकी चर्चा तो चल पड़ी, किन्तु शरारतकी

जड़ भीखूका किसीने नाम नहीं लिया। जमादारका आतंक तो था ही।

शाम आयी और चली गयी। धीरे-धीरे रात भी व्यतीत होने लगी। मंगरूके यहाँ न तो कोई सिपाही पहुँचा, न जमादार ही। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ; क्योंकि उन्होंने तो मान लिया था कि आज कुछ न कुछ होगा जरूर!

मंगरूने रातको बकरियोंको बाड़ेमें बन्द किया और सो रहा। सुबह विस्तरसे उठकर जब बाड़ेमें पहुंचा तो देखा दो बकरियाँ गायब थी। मंगरूको जैसे काठ मार गया! उसकी समझमें नहीं आया कि बकरियाँ चली कहाँ गयीं।

बाड़ेसे निकलकर मंगरूने गलीका कोना-कोना छान मारा, लोगों से पूछा भी, लेकिन बकरियोंका पता न चला। बातचीतके सिल-सिलेमें लोगोंने अपना-अपना शक अवश्य जाहिर कर दिया। दो घंटेके बाद यह बात मंगरूके दिलमें बैठ गयी कि या तो भीखूने उसकी बकरियाँ ग़ायबकी हैं, या जमादार ने।

मुहालकी बात ठहरी। भीखूसे छिपती कैसे। पहले तो उसे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मंगरूकी बकरियाँ गायब हो गयी हैं, किन्तु जब उसे पता लगा कि मंगरू यह कहता है कि भीखूने ही उसकी बकरियाँ गायब की हैं तो वह आगबबूला हो गया! उसने न आगे देखा और न पीछे। पहुँच ही गया मंगरूके पास और बोला—'क्यों मंगरू, बुढ़ौतीमें मुँह काला करवाना चाहते हो क्या? देखता हूँ, तुम्हारा दिमाग बहुत चढ़ गया है। कौन उल्लू कहता है कि तुम्हारी बकरियाँ मैंने चुरायी हैं?'

मंगरू यों ही झुँझलाया हुआ था,। भिखूका आना और इस प्रकार धमकाना उसे कुछ अच्छा न लगा। क्षुब्ध होकर बोला,

—'जिन्दगी बीत गयी छिछोरपनमें, आज आये हो साहूकार बन कर! कालिख मेरे मुँहमें लगेगी। तुम अपना मुँह बचाकर रखना।'

भीखू इतना कैसे सह सकता था। उसने आगे बढ़कर मंगरूको दो हाथ जड़ ही दिये! बस, फिर क्या था। देखते-देखते काफी शोर-गुल मच गया। मंगरूके घरके पास बहुतसे लोग एकत्र हो गये। और सब तो चुप रहे लेकिन जोखन भीखूकी हरकतको बर्दास्त न कर सका। वह मंगरूकी बड़ी इज्जत करता था। उसने आगे बढ़कर कहा,—'तुम्हें शर्म नहीं आयी दादापर हाथ छोड़ते! बराबरवालेसे भिड़ते तो समझता तुम्हें। चोरी और सीनाजोरी भी!'

जोखनकी ओर क्रोधपूर्ण नेत्रोंसे देखते हुए भीखूने कहा,—
—'अरे जोखना, शामत आयी है क्या! मुझे शर्म आयी या नहीं, तुझसे मतलब? तेरे बापका क्या जाता है।'

जोखन लड़ाई-झगड़ेसे बिलकुल दूर रहता था। कोई कुछ कह भी देता तो वह चुपचाप बर्दास्त कर लेता था। किन्तु एकाएक न जाने क्यों वह बहुत क्रोधित हो गया और इसी क्रोधमें उसने लपककर भीखूकी गर्दन पकड़ ली और उसे दे मारा! फिर क्या था खासा हंगामा मच गया। भीखू और जोखन जमकर लड़ने लगे। दोनों गठे हुए जवान थे। लेकिन बीस जोखन ही पड़ रहा था। अन्तमें लोगोंने बीचमें पड़कर दोनोंको अलग-अलग कर दिया। झगड़ा शान्त हो गया। कुछ देरमें सभी अपने अपने घर चले गये!

लगभग एक घंटेके बाद पुलिस जमादार चार लट्ठधारी सिपाहियोंके साथ मंगरूके घर आ धमका। मंगरूको सामने ही पाकर जमादार तड़पा—'अबे मंगरूआ, बाहर निकल।'

मंगरू ऐसा हो रहा, मानों उसने कुछ सुना ही नहीं। उसकी इस हरकतको देखकर जमादार जल-भुन गया। वह फौरन उछलकर मंगरूकी कोठरीमें घुस गया और उसे खींचता हुआ बाहर ले

आया। मंगरूने हाथ छुड़ानेकी कोशिशके अतिरिक्त और किसी तरहका प्रतिवाद नहीं किया। बाहर लाकर जमादारने कसकर तीन-चार तमाचे मंगरूके मुँहपर जमाये और बोला,—'हरामजादे नवाब हो गया है। देखता हूँ कौन हिमायत करता है तेरी।'

जमादारके इशारेपर सिपाहियोंने मंगरूकी बाहें उसकी पीठपर चढ़ाकर बाँध दीं। उसके बाद जमादार वहीं बैठ गया। उसने गलीके तमाम लोगोंको बुलानेके लिए एक सिपाही भेज दिया।

कुछ देरमें जमादार साहबका दरबार लग गया। जमादारने सबसे पहले जोखनको अपने पास बुलाया और कहा,—'क्यों बे जोखना, तूने भीखूको मारा है क्या ?'

'सरकार, उसने मुझे गाली दी थी।'

'गाली दी इसलिए ही तूने उसका सिर फोड़ दिया, क्यों ?'

जमादारकी बातें सुनकर जोखन अवाक् हो गया। उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि जमादार क्या कह रहा है !

जोखनको चुप देखकर जमादारने इधर-उधर आँखें घुमायीं। भीखू सिरमें पट्टी बाँधकर एक कोनेमें खड़ा था। जमादारने उसे अपने पास बुलाकर जोखनसे कहा, 'क्यों बे, देखता है, उसके माथेमें पट्टी बँधी है।'

जोखन कुछ बोलना ही चाहता था, किन्तु उससे पूर्व ही मंगरू बोल उठा,— 'बेईमानी फलेगी नहीं भीखू। इस तरह चाल चलकर आज तुम भले ही जोखनको फँसानेमें कामयाब हो जाओ, लेकिन अन्तमें तुम्हें रोना पड़ेगा जरूर।'

मंगरूको बीचमें बोलते देखकर जमादारको बड़ा गुस्सा चढ़ा। उसने एक सिपाहीको ललकारकर कहा—'लगाओ सालेको दो हाथ, बक बक कर रहा है ?'

मुहालके पचीसों आदमी खड़े थे और मंगरू पीटा जा रहा

था। किसीने चूँ तक न की। सब मन ही मनमें मंगरू और जोखनको कोस रहे थे। जमादारने इशारा किया। जोखनकी भी मुश्कें कस दी गयीं।

जमादारने जिससे जो चाहा वही लिखा लिया। अपनी जेब भरी और थानेकी ओर चल पड़ा।

थानेदार मंगरूसे परिचित था। उसे उस दशामें देखकर थानेदारने जमादारसे पूछा,—'क्या बात है?'

हुजूर इसने भीखूका सिर फोड़वा दिया है।'

'भीखू कौन है?'

'जी, भीखू...भी...खू, भीखू इसीके मुहालमें रहता है।'

'हूँ! क्यों मंगरू क्या बात है?'

'कुछ नहीं सरकार, भाग्यकी बात है।'

'क्या मतलब?'

'हम बेगुनाह हैं सरकार। जमादार साहब भीखूके दोस्त हैं। वह रोज मुहाल वालोंको तंग करता है, परेशान करता है, पैसे ऐंठता है, लेकिन उसे कोई कुछ नहीं कहता सरकार।'

थानेदारने मंगरूकी ओरसे दृष्टि घुमाकर जोखनकी ओर देखा और पूछा—'क्यों बे तूने भीखूका सिर फोड़ा है?'

'नहीं सरकार!'

'नहीं, सरकार! तब क्या जमादार साहब झूठ बोल रहे हैं?'

'भीखूको बुलाकर देख लिया जाय साहब।'

जोखनकी बात सुनकर थानेदारने जमादारकी ओर देखा! जमादारने नजर बचानेके लिए सिर नीचाकर लिया। थानेदार था समझदार। उसे कुछ शंका हुई। उसने फौरन भीखूको बुलानेके लिए एक सिपाही भेज दिया।

जो सिपाही भीखूको बुलाने जा रहा था उसने जाते-जाते एक

बार जमादारकी ओर देखा और जमादरने उसकी ओर। दोनोंकी आँखें चार हो गयीं। सिपाही चला गया!

भीखूके पास पहुँचकर पहले तो सिपाहीने उसे कुल हाल बताया और फिर थानेपर चलनेको कहा। दो-चार मिनट तक तो भीखू न जाने क्या सोचता रहा फिर बोला, अच्छा रुको मैं चलता हूँ।

घरके भीतर जाकर भीखूने सिरपर बँधी पट्टी खोल डाली। पट्टी यों ही बँधी थी। कहीं किसी प्रकारकी चोट नहीं थी। भीखूने जमीनपर पड़ी एक ईंट उठा कर कसकस अपने सिरपर चोट पहुँचायीं। दूसरे ही क्षण उसके सिरसे खून टपकने लगा।

खून देखकर भीखू मुस्कुरा उठा। उसने जल्दीसे घाव धोया और फिर पट्टी बाँधकर अन्दर चला गया। सिपाही वहाँ था ही। दोनों कुछ देरमें थानेपर पहुँच गये।

भीखूको देखकर थानेदारने कहा, 'क्यों जी, जोखनने तुम्हारा सिर फोड़ा है?'

'भीखूने हाथ जोड़कर कहा—'जी हुजूर।'

'जरा अपनी पट्टी खोलो तो।'

थानेदारका इतना कहना था कि जमादारका मुँह पीला पड़ गया। किन्तु भीखूने मुस्कराते हुए पट्टी खोल दी। उसके सिरमें घाव देखकर जमादारकी जानमें जान आयी। वह मन ही मन उसकी बुद्धिकी प्रशंसा करने लगा।

थानेदारने उठकर भीखूके सिरका घाव देखा और बोला,—'चोट कब लगी थी?'

भीखूने जवाब दिया,—'कोई दो टा हुआ होगा, सरकार।'

'पट्टी कब बाँधी थी?'

दूसरा प्रश्न सुनकर भीखू कुछ हिचकने लगा। कुछ संभलकर बोला, 'अभी पट्टी बदली है सरकार।'

हूँ ।' कहकर थानेदार बैठ गया । इसने जोखन और मगरू की मुश्कें खुलवा दीं । कुछ देर चुप रहनेके बाद थानेदारने कहा,—'क्यों मंगरू तुम्हारी बकरियाँ कैसी है ?'

'क्या बताऊँ सरकार !' दर्दभरी आवाजमें मंगरू बोला, 'उन्हींके कारण तो इतना बावेला मचा है !'

आश्चर्यसे उसकी ओर देखकर थानेदारने कहा,—'क्या मतलब !'

उत्तरमें मंगरूने क्रमशः सारी कहानी सुना दी और फिर मुँह लटकाकर चुप हो रहा !

थानेदारने सभीको आश्चर्यचकित करते हुए आश्चयसे कहा, 'तुम्हारी दोनों बकरियाँ अभी तक पहुँची नहीं क्या ! तुम्हींने रातको दोनों बकरियाँ मेरे पास भेजी थीं ।'

थानेदारकी बातें सुनकर मंगरू भौंचक हो गया । आँखें फाड़-फाड़कर थानेदाकी ओर देखते हुए उसने कहा,—'नहीं सरकार, मैंने तो नहीं भेजी थी ।'

मंगरूकी बात सुनकर थानेदारने आवाज दी—'रामसिंह, इधर आओ तो ।'

दूसरे ही क्षण एक सिपाही थानेदारके आगे आकर खड़ा हो गया । थानेदारने उससे पूछा,—'तुम रातको बकरियाँ लाये थे न ?'

'जी ।'

'क्या तुमने मंगरूसे कहा नहीं था ?'

'नहीं सरकार ।'

'क्यों ?' डपटकर थानेदारने पूछा !

सिपाहीने जमादारकी ओर देखा । मुँहकी बातें मुँहमें ही रह गयीं । उसने जवाब नहीं दिया । थानेदार समझ गया कि शरारतमें जमादारका हाथ है । उसने उस समय फिर सिपाहीसे कुछ नहीं

कहा। मंगरू और जोखनको छोड़ दिया। वे अपने अपने घर चले गये।

शामको रामसिंहको एकान्तमें बुलाकर थानेदारने उससे कहा कि 'तुमने मंगरूकी सूचना क्यों नहीं दी थी ?'

रामसिंहने उत्तर दिया,—'हल्केकी बात थी हुजूर। मैंने जमादार साहबसे कहा था। उन्होंने मुझसे कहा, उससे पूछनेकी क्या जरूरत है ! खोल लाओ सालेकी बकरियाँ'

'हूँ !" कहकर थानेदार चुप हो गया।

मंगरूके मुहालवालोंको जब यह मालूम हुआ कि बकरियाँ थानेदारने मँगवायीं थी उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ! उससे भी बड़ा आश्चर्य उन्हें भीखूको स्वतंत्र देखकर हुआ। सब यही कह रहे थे कि जब उन्होंने समझ लिया कि 'केस' बनावटी है, तो फिर उसे छोड़ क्यों दिया ?

---

# मिट्टीकी मूर्ति

उसका नाम था कमल। मिट्टीकी कलापूर्ण मूर्तियाँ बनाना ही उसका काम था। स्वभाव कुछ तीखा था। मन होता तो काम करता, अन्यथा साफ-साफ दो टूक जवाब दे देता।

उस दिनकी बात है। कमल एकाग्रचित्त होकर एक मूर्तिकी ओर देख रहा था। वह उसकी नवीनतम कृति थी। मूर्ति पूर्णतः दोषविहीन थी। कल्पनाको इस प्रकार मूर्त होते कमलने कभी देखा नहीं था। जिस क्रमसे समय व्यतीत हो रहा था, कमलका आत्म-सन्तोष भी उसी क्रमसे बढ़ता जा रहा था। उसे क्या मालूम था कि जिस मूर्तिको देखकर उसे अत्यधिक शान्ति प्राप्त हुई, वही मूर्ति, भाग्यकी विडम्बनाके कारण, भविष्यमें उसके लिए घोर अशान्तिका कारण हो जायेगा।

जिस समय कमल उस कलापूर्ण मूर्तिकी अनुपम छबि निहारने-में मग्न था, उसी समय नगरके प्रसिद्ध रईस बाबू प्रेमनाथने उसकी दूकानमें प्रवेश किया। उस समय कमलको उनका आगमन कैसे

ज्ञात होता ! वह तो बेसुधसा हो गया था । बाबू प्रेमनाथके आने-पर भी वह हिला-डुला नहीं । पूर्ववत् ही बैठा रहा ।

बाबू प्रेमनाथको यद्यपि कमलका व्यवहार अच्छा न लगा तथापि वह यह सोचकर चुप रहे कि एक दो मिनटके बाद वह मेरी ओर देखेगा ही । किन्तु उनका अनुमान गलत सिद्ध हुआ । पाँच-सात मिनट बीत गये, फिर भी कमलने उनकी ओर देखा नहीं । अन्ततः क्षुब्ध होकर बाबू प्रेमनाथ बोले,—'मेरे पास इतना व्यर्थ समय नहीं कि मैं घंटे भरतक आपकी प्रतीक्षा करता रहूँ ।'

बाबू प्रेमनाथका तीव्र कंठ-स्वर कमलके कर्णकुहरोंमें प्रविष्ट हुआ । उसकी तंद्रा भंग हो गयी । मुँह घुमाकर उसने बाबू प्रेमनाथकी ओर देखा और कुछ रुष्ट-सा होकर बोला,—'क्या चाहते हैं आप ?'

बाबू प्रेमनाथने सोचा था कि उनकी बोली सुनकर कमल खड़ा हो जायेगा और अपनी भूलके लिए क्षमा माँगेगा । किन्तु इसके विपरीत व्यवहार करते देखकर उनका क्रोध भड़क गया । उन्होंने कहा,—'सभ्यता भी कोई चीज होती है । आध घंटेसे मैं तो आपके बोलनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ और आप मुझसे इस प्रकार प्रश्न पूछ रहे हैं मानो मैं आपका नौकर हूँ ।'

और कोई अवसर होता तो कमल बुरी तरह उलझ पड़ता, किन्तु उस समय न जाने कैसे उसने यह मान लिया कि सचमुच मैंने भूल की है । वह अविलम्ब उठकर खड़ा हो गया और कोमलतासे बोला,—'कष्टके लिए क्षमा चाहता हूँ महाशय । इस मूर्तिकी सुन्दरता देखते देखते मैं बेसुध-सा हो गया था ! देखिये न आप भी, कितनी कलापूर्ण है यह मूर्ति !'

वस्तुतः प्रथमबार बाबू प्रेमनाथकी दृष्टि उस मूर्तिपर पड़ी । वह भी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु स्वभावके अनुसार उन्होंने

अपनी प्रसन्नता व्यक्त नहीं की और कहा,–'हाँ, अच्छी है। लेकिन कोई विशेषता तो नहीं दिखाई देती !'

'हो सकता है।' कुछ मर्माहत-सा हो कर कमल बोला,— 'अपनी-अपनी परख है !'

'क्या मूल्य है इसका ?' बाबू प्रेमनाथ ने लापरवाहीसे पूछा। कमलने उत्तर दिया,—'क्या कीजियेगा इसका मूल्य पूछकर। अगर आप अपने आगमनका कारण बतानेकी कृपा करें तो आपके अमूल्य समयको नष्ट होनेसे बचा सकूँगा।'

'किसी विशेष कारणसे नहीं आया हूँ।' बाबू प्रेमनाथने उत्तर दिया,—'कुछ खरीदनेके लिए ही चला आया। आपके यहाँ और कुछ तो है नहीं।'

नवीन मूर्तिकी ओर संकेत करते हुए कमलने कहा,—'यह मूर्ति तो आपको पसन्द है नहीं। और कोई देख लीजिये, उसका मूल्य बता दूंगा।'

'और अगर मैं इसे ही खरीदना चाहूँ तो ?'

'आप इसे नहीं खरीद सकते।' कुछ तीव्र स्वरमें कमल बोला, 'कोई कला-पारखी ही इसे ले सकता है।'

तनकर बाबू प्रेमनाथने कहा,—'इसका अर्थ ?'

'क्षमा कीजियेगा महाशय,' क्षुब्ध होकर कमल बोला,— 'व्यर्थके वाद-विवादके लिए मेरे पास समय नहीं है !

'व्यापार अभिमानसे नहीं किया जाता।'

'कलाकार व्यापारी नहीं होता।'

'हूँ....फिर दूकान सजाकर रखनेका अर्थ क्या है ?'

इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए मैं बाध्य नहीं हूँ।'

कमलका उत्तर सुनकर बाबू प्रेमनाथ बहुत क्रोधित हुए। इच्छा तो हुई कि मूर्ति उठाकर पटक दें किन्तु न जाने क्या सोचकर क्रोध

पी गये और बोले,—'अच्छा, आप इसका मूल्य बताइये। मैं इसे ले जाऊँगा।'

कमलने गम्भीर होकर कहा,—'यह कलाकारकी अनुभूतिका साकार रूप है, इसलिए यह अमूल्य है! विश्वकी सम्पत्ति पानेपर भी मैं इसे बेचनेके लिए प्रस्तुत न होऊंगा।'

'मैं शिक्षा नहीं मूर्ति लेने आया हूँ।'

'मैं मूर्ति बेचनेके लिए नहीं, कलाका मूल्य बतानेके लिए उपस्थित हूँ।'

'इस अभिमानके कारण पश्चाताप ही हाथ लगेगा!'

'इसका निर्णय भविष्य करेगा।'

'तो आप मूर्ति नहीं बेचेंगे?'

'नहीं।'

'किसी भी मूल्यपर नहीं?'

'हाँ, किसी भी मूल्यपर नहीं।'

'अच्छा, देखा जायेगा।' कहकर बाबू प्रेमनाथ दूकानसे बाहर चले गये। कमल मूर्तिके समीप बैठ गया और ध्यानसे उसकी ओर देखने लगा।

'जीवनमें प्रथमबार अनुभूतिका दर्शन-लाभ कर सका हूँ। कलाकारके गौरवमय अभिमानका ज्ञान-लाभ इस मूर्तिके कारण ही हुआ है। यह जीवन-निधि है। यही मेरी साधनाको जीवन-पर्यन्त अनुप्रेरित करती रहेगी। इसे कैसे बेच सकता हूँ मैं!'

कमलने मूर्ति उठाकर टेबुलपर रख दी। फिर उसके चारों ओर शीशेके टुकड़ोंकी दीवारें खड़ी कर दीं और चारों दीवारों के सहारे शीशेका एक टुकड़ा ऊपर भी रख दिया।

धीरे-धीरे लगभग एक मास व्यतीत हो गया। इस बीच उस मूर्तिको हस्तगत करनेके लिए बाबू प्रेमनाथने अनेक प्रयास किये

किन्तु प्रत्येक बार असफलता ही हाथ लगी। मूर्ति प्राप्त करनेके लिए वह बहुत बेचैन हो गये। इस बेचैनीका पहला कारण तो यह था कि उस मूर्तिके कारण उन्हें एक साधारण मूर्ति बनाने वालेके सम्मुख नीचा देखना पड़ा था। दूसरा कारण यह था कि वह मूर्ति उनके हृदयमें बस गयी थी। उसकी सुन्दरताके आगे उन्हें अपने संग्रहालयकी सब मूर्तियोंकी सुन्दरता फीकी मालूम पड़ती थी।

जब पैसेके बलपर बाबू प्रेमनाथ मूर्ति हस्तगत न कर सके, तब उन्होंने अन्य उपायसे काम लेना तय किया। एक चतुर व्यक्तिको उन्होंने कमलके पास भेजा और उससे यह कहा गया,—"बाबू साहब सचमुच कलाके पारखी हैं। उन्हें अपने व्यवहारके कारण बहुत दुःख हुआ है। यह तो समयकी बात है। कभी मनुष्य का मस्तिष्क शान्त रहता है और कभी अशान्त। तुम्हीं सोचो, अगर उन्हें संग्रहका शौक न होता तो इतना पैसा क्यों फूँकते। देखो उनका संग्रहालय जाकर। अनेक प्रकारकी कलात्मक वस्तुओं-से भरा है वह। अगर तुम उन्हें यह मूर्ति दे दोगे तो वह तुम्हारी ख्यातिमें चार चाँद लगा देंगे।"

बाबू प्रेमनाथको पूरा विश्वास था कि उनका यह वार खाली न जायेगा किन्तु इस बार भी असफता ही हाथ लगी। बाबू प्रेम-नाथने जिस व्यक्तिको कमलके पास भेजा था, कमलने हँसते-हँसते उसे उत्तर दे दिया था, "कलाका पारखी कभी कलाकारका अपमान नहीं कर सकता मित्र! अगर उन्हें सचमुच कलासे प्रेम है तो वह किसी भी कलात्मक वस्तुको कहीं भी देखकर संतोष-लाभ कर सकते हैं। इस प्रकार कलात्मक वस्तुओंका संग्रह करना विलासका ही एक अंग होता है। पैसे वाले भोली दुनियाँको इसी प्रकार मूर्ख बनाते हैं। लाचार हूँ, मूर्ति मैं नहीं दे सकता।"

कमलका उत्तर सुनकर बाबू प्रेमनाथ कुचले हुए साँपकी

भाँति क्रोधित हो उठे। फलतः मूर्ति हस्तगत करनेका उनका विचार और भी दृढ़ हो गया।

धीरे-धीरे बाबू प्रेमनाथका घूमना-फिरना, सैर-सपाटा, और आमोद-प्रमोद सब छूट गया। वह दिन-रात यही सोचते रहते कि मूर्ति किस प्रकार हस्तगत की जा सकती है। अन्तमें एक तरकीब सूझ ही गयी। बाबू प्रेमनाथ प्रसन्न हो गये।

षड़यन्त्र प्रारम्भ हुआ। बाबू प्रेमनाथ परदेकी ओटमें ही रहे। उनके पैसेके बलपर अन्य व्यक्तियोंने बड़े जोर-शोरसे कलात्मक वस्तुओंकी प्रदर्शनीका आयोजन करना प्रारम्भ किया। आयोजकों-को प्रदर्शनीके लिए बहुत सी कलात्मक वस्तुएँ प्राप्त भी हो गयीं। बाबू प्रेमनाथकी वास्तविक इच्छासे प्रदर्शनीके आयोजक परिचित न थे इसलिए उन्हें केवल अपनी सफलताकी ही धुन थी।

दूर-दूरके शहरोंसे प्रदर्शनीके लिए अनेक वस्तुएँ अवश्य प्राप्त हुईं किन्तु जिस मूर्तिके लिए बाबू प्रेमनाथने धन नष्ट कर प्रदर्शनीका आयोजन कराया था, वह प्रदर्शनीके आयोजकोंको प्राप्त न हुई। बाबू प्रेमनाथको ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस बार भी असफलता-का सामना करना पड़ेगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस बार भाग्य-चक्र उनके अनुकूल था। अपने एक मित्रके आग्रहपर कमलने भी प्रदर्शनीमें मूर्ति भेजनेका निर्णय कर लिया। कुछ दिनों बाद प्रदर्शनीके आयोजकोंसे बाबू प्रेमनाथको जब कमलके निर्णयका समाचार प्राप्त हुआ, तब उनकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उस दिन उन्होंने अपने मित्रोंको खूब खिलाया-पिलाया।

धीरे-धीरे प्रदर्शनी प्रारम्भ होनेका दिन भी समीप आ गया। दो दिन पूर्व कमलने मूर्ति प्रदर्शनीके अधिकारियोंके पास भेज दी और नियमानुसार मूर्ति देनेका प्रमाण-पत्र हस्तगत कर लिया।

प्रदर्शनी प्रारम्भ हो गयी। धीरे-धीरे दो-चार दिन व्यतीत भी

हो गये। कमल नित्य प्रदर्शनीमें जाता और कमसे कम एक बार अपनी मूर्ति अवश्य देख लेता। सातवें दिन जब कमल वहाँ पहुँचा, तब प्रदर्शनी कमेटीके प्रधान-मन्त्रीको फाटकके समीप उसने खड़े पाया। कमलने उन्हें नमस्कार किया और आगे बढ़नेका प्रयास किया। किन्तु वह आगे न बढ़ सका। प्रधानमन्त्रीने उसे वहीं रोक लिया और बोले,—'मैं आप ही की प्रतीक्षाकर रहा था। हमारे कारण आपकी बड़ी हानि हुई है।"

कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कमल बोला,—'मैं आपकी बातों-का अर्थ नहीं समझ सका!

प्रधान-मन्त्रीने कहा,—"बात यह है कि असावधानीके कारण आपकी मूर्ति नष्ट हो गयी है। जिस स्थानपर आपकी बनायी हुई मूर्ति रखी थी उसके ऊपर की छत टूटी हुई है। रातको चपरासीने छतपर पानी गिरा दिया। छतका वह स्थान कुछ गहरा है इसलिए पानी वहीं रुक गया था। पानीकी बूँदे रातभर आपकी बनायी हुई मूर्ति पर टपकती रहीं। मूर्ति खराब हो गयी है।

दुःखी होकर कमलने पूछा,—"क्या मूर्तिका रंग बिलकुल छूट गया?"

"जी नहीं, केवल रंग ही छूटा होता तो इतनी चिन्ता न होती। कच्ची मिट्टीकी मूर्ति होने कारण उसका सिर ही गल गया है।"

प्रधान-मन्त्रीकी अन्तिम बातें सुनकर कमलका माथा ठनक गया। हृदयमें उठी शंकाको दबाते हुए कमल बोला,—"कृपाकर जरा आप मेरे साथ वहाँतक चलनेका कष्ट करें।"

प्रधान-मन्त्रीने कहा—"चलिये।"

जिस समय कमल वहाँ पहुँचा उस समय उसे मालूम हुआ कि प्रधान-मन्त्रीने जो कुछ कहा था, वह पूर्णतः सच है।

मूर्तिको देखकर कमलने तत्काल ही प्रश्न किया, "सबसे पहले मूर्ति नष्ट होनेकी सूचना आपको किसने दी थी ?"

आश्चर्यसे कमलकी ओर देखते हुए प्रधान-मन्त्रीने कहा, "मुझसे तो सबसे पहले बाबू प्रेमनाथने ही कहा था !"

प्रधान-मन्त्रीका उत्तर सुनकर कमल चौंक पड़ा। कुछ संभलनेके बाद तीव्र दृष्टिसे प्रधान-मन्त्रीकी ओर देखते हुए उसने कहा,—"यह बात है। मूर्ति प्राप्त करनेके लिए इतना बड़ा षड़यन्त्र रचा गया !"

कुछ परेशान होकर प्रधान-मन्त्रीने कहा,—"क्या कह रहे हैं आप। मैं आपकी बातोंका अर्थ नहीं समझ सका।"

इतनी ही देरमें कमलका सारा क्रोध काफूर हो गया था। एक अजीब सी वेदनासे उसका हृदय भर गया था। विकल होकर उसने कहा,—"क्या बताऊँ आपको। मूर्ति नहीं नष्ट हुई है, मेरा हृदय टूट-गया है।"

"लेकिन आप यह तो बताइये षड़यन्त्रसे आपका तात्पर्य क्या है ?

न जाने किस मन्त्रके वशीभूत होकर कमलने बाबू प्रेमनाथ सम्बन्धी सारी बातें कह सुनाईं। कमलकी कहानी सुनकर प्रधान-मन्त्रीको भी बड़ा दुःख हुआ। साथ ही उन्हें यह जान कर कुछ क्षोभ भी हुआ कि मूर्ति प्राप्त करनेमें बाबू प्रेमनाथने उन्हें भी मूर्ख बनाया। लेकिन वह कर क्या सकते थे।

कमल फिर कुछ नहीं बोला। मूर्ति लेकर घर लौट आया।

उस रात उसे नींद नहीं आयी। सारी रात आँखें टँगी रहीं और पड़ा-पड़ा वह यह सोचता रहा कि इस दुष्टताका बदला कैसे लिया जाये ?

दो दिन और दो रातें गुजर गयीं। कमलको कोई उपाय सूझ नहीं पड़ा। इस बीच न तो उसने कुछ खाया और न पीया। दो

दिनोंमें ही उसकी दशा ऐसी हो गयी मानों महीनोंसे बीमार हो। तीसरे दिन आधीरातके समय एकाएक उसकी सारी चिन्ता दूर हो गयी। हृदय कुछ हलका हो गया और उसने सोनेका प्रयास किया। किन्तु नींद नहीं आयी। करवटें बदल बदलकर ही रात काटनी पड़ी।

प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर कमलने कुछ जलपान किया और घरके बाहर निकल पड़ा। पहले दिन तो उसे अपने कार्यमें कुछ भी सफलता प्राप्त नहीं हुई किन्तु दूसरे दिन थोड़ा सहारा अवश्य मिल गया। उसने एक ऐसे रईसको ढूँढ़ निकाला जिन्हें किसी समय बाबू प्रेमनाथके सम्मुख नीचा देखना पड़ा था किन्तु इस समय बाबू प्रेमनाथसे ऊपरी मित्रता कायम थी। अपने वाक् कौशलसे कमलने उस रईसको इस बातके लिए राजी कर लिया कि वह उसकी बनायी हुई एक मूर्ति किसी न किसी तरह बाबू प्रेमनाथके घरमें ऐसे स्थानपर रखवा देंगे जहाँ दो तीन दिनतक किसीकी दृष्टि न पड़ सकेगी।

इस बातके दूसरे ही दिन कमलने अदालतमें दावा दायर कर दिया और बाबू प्रेमनाथपर यह अभियोग लगाया कि उन्होंने मेरी बनायी हुई मूर्ति गायब कर दी है और उसके स्थानपर दूसरी मूर्ति रखकर और उसे नष्टकर धोखा देनेका प्रयास किया है।

बाबू प्रेमनाथको जब यह मालूम हुआ तब वह सन्नसे हो गये! उन्होंने प्रदर्शनी कमेटीके प्रधान-मन्त्रीको बुलाकर पूछताछ की। प्रधान-मन्त्री कमलसे जो कुछ सुना था, उसे सुना दिया। उनकी बातें सुनकर बाबू प्रेमनाथने मन ही मनमें कहा,—"अच्छा, देखा जायेगा। देखता हूँ मेरे पंजेसे उसे कौन बचाता है।"

मुकदमेंकी पेशी पन्द्रह दिनों बाद होनेवाली थी। इस बीच

उसने उसी तरहकी एक दूसरी मूर्ति तैयार की और बाबू प्रेम-नाथके पुराने शत्रु किन्तु वर्तमान मित्र रईसके पास पहुँचा दी।

धीरे-धीरे मुकदमेकी पेशीका दिन भी समीप आ गया। पहले ही दिन कमलने यह कहा कि "मुझे संदेह है कि मेरी मूर्ति बाबू प्रेमनाथ अपने घर ले गये हैं। मैं अदालतसे यह प्रार्थना करता हूँ कि वह बाबू प्रेमनाथके घरकी तलाशीके लिए पुलिसको आज्ञा दे।"

अदालतने कमलकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फ़लतः उस दिन बाबू प्रेमनाथके घरकी तलाशी ली गयी। कमलके नव-परिचित रईसने कुछ ऐसा प्रबन्ध कर दिया था कि कुछ देरके बाद ही उनके द्वारा रखवायी गयी मूर्ति पुलिसके हाथ लग गयी। पुलिसने मूर्ति अपने अधिकारमें कर ली।

दूसरी पेशीमें जजने बाबू प्रेमनाथसे सफाई माँगी।

जिस समय पुलिसने बाबू प्रेमनाथके घरमें प्राप्त होनेवाली मूर्ति अपने कब्जेमें की थी। उस समय बाबू प्रेमनाथने गौरसे वह मूर्ति देख ली थी। यद्यपि उस मूर्तिको कमलने बड़ी सावधानीसे बनाया था तथापि वह उस पहली मूर्तिकी भाँति नहीं बना सका था। दोष साधारण था। मूर्ति सरस्वतीकी थी। पहली मूर्तिमें वीणा तीन तार की थी और दूसरामें केवल दो की। बाबू प्रेमनाथने उसी समय इस दोषको लक्ष्य कर लिया। सफाईके समय बाबू प्रेमनाथने अदालतके सम्मुख एक फोटो उपस्थित करते हुए कहा कि,—'जो मूर्ति पुलिसको मेरे घरमें मिली है, वह मूर्ति वही नहीं है जिसे नष्ट करनेका अभियोग वादीने लगाया है। इस फोटोकी एक प्रति वादीके पास भेज दी गयी थी। अदालत देख सकती है कि फोटोमें वीणा तीन तारकी है और पुलिसने जो मूर्ति उपस्थित की है, उस मूर्तिमें

बनी वीणा केवल दो तारकी है। जो मूर्त्ति नष्ट हुई है, वादीने वही मूर्ति दी थी'

बाबू प्रेमनाथकी सफाई सुनकर कमल दंग रह गया। फिर भी उसने साहस नहीं छोड़ा। उसने फोटो अपने हाथमें लिया और टूटी हुई कच्ची मिट्टीकी मूर्तिके साथ उसे मिलाने लगा। पाँच मिनटके बाद मुस्कराहट उसके ओंठोंपर झलकने लगी। बाबू प्रेमनाथकी सफाईके उत्तरमें कमलने अदालतसे कहा,—'बाबू प्रेमनाथ अदालतके सम्मुख यह स्वीकार कर चुके हैं कि जो फोटो अदालतमें पेश किया गया, वह उस मूर्त्तिका है जो मैंने प्रदर्शनीके अधिकारियोंको दी थी। साथ ही उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि नष्ट प्राय: कच्ची मिट्टी की जो मूर्त्ति अदालतमें मौजूद है, वही मूर्त्ति मैंने दी थी। मैं स्वीकार करता हूँ कि जो मूर्त्ति बाबू प्रेमनाथके घरसे प्राप्त हुई है, वह मेरी नहीं है किन्तु साथ ही मैं यह भी कहता हूँ कि जो मूर्त्ति नष्ट हो गयी है, वह भी मेरी नहीं। अदालत देख सकती है कि इस नष्ट प्रायः मूर्तिकी वीणा भी दो तारकी है। इससे यह प्रतीत होता है कि मेरी मूर्त्ति को गायब करनेके लिए दो मूर्तियाँ बनवायी गयी थी। यद्यपि ये दोनों मूर्त्तियाँ मेरी मूर्त्तिके सदृश्य कलात्मक नहीं तथापि उनमें साम्य है। मालूम होता है कि बाबू प्रेमनाथने पक्की मिट्टीकी मूर्त्ति को यह समझकर अपने पास रख लिया था कि पानी पड़नेसे वह गल न सकेगी। फोटोकी वीणा और गली हुई मूर्तिके हाथकी वीणाको मिलाकर अदालत यह देख सकती है कि बाबू प्रेमनाथने जो कुछ कहा है, वह झूठ है।'

कमलकी बातें सुनकर बाबू प्रेमनाथके मुखका रंग उड़ गया। चतुर जजकी दृष्टिने बाबू प्रेमनाथके मुखके बदले हुए रंगको अच्छी तरह लक्ष्य कर लिया। दोनों पक्षकी बातें सुनकर जजने फोटो, टूटी

हुई मूर्त्ति तथा बाबू प्रेमनाथके घरसे प्राप्त होने वाली मूर्ति अपने पास मँगा ली और उन्हें ध्यानसे देखा। इसके बाद मुकदमा स्थगित कर दिया गया।

× × ×

जज साहब बाबू प्रेमनाथके परिचित थे। वह इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि बाबू प्रेमनाथको मूर्त्ति इत्यादिके संग्रहका शौक है। उन्हें यह भी स्मरण था कि एकबार बाबू प्रेमनाथने कमलकी मूर्त्तिके सम्बन्धमें उनसे कुछ कहा था।

मुकदमा कमजोर था। जज साहब प्रमाणके आधारपर कमल-के पक्षमें फैसला देनेके लिए बाध्य थे। उन्होंने बाबू प्रेमनाथको अपने बँगलेपर बुलाकर सारी स्थिति समझा दी और जोर देकर उन्हें समझौतेके लिए राजी कर लिया।

जज साहबके प्रयाससे कमल भी मान गया। जज साहबने उसे वचन दिया कि 'तुम्हारी मूर्त्ति मैं वापस दिला दूँगा।' कमलने मुकदमा उठा लिया।

× × ×

जज साहब आराम कुर्सीपर लेट कर धूम्रपान कर रहे थे। उसी समय बाबू प्रेमनाथ उनके कमरेमें पहुंचे और बोले,-'जज साहब!'

बाबू प्रेमनाथका मुख उतरा हुआ था। मुखका रंग स्याह-सा हो गया था। वह कुछ घबरायेसे थे। उस अवस्थामें उन्हें देखकर जज साहबको बड़ा आश्चर्य हुआ। कुर्सीकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा,—'क्या बात है बाबू प्रेमनाथ ?'

'क्या बताऊँ जज साहब,'-मस्तक ठोककर बाबू प्रेमनाथने उत्तर दिया,—'मेरे कारण आपको भी नीचा देखना पड़ेगा। मूर्त्ति किसीने चुरा ली है।'

बाबू प्रेमनाथकी बातें सुनकर जज साहब चौंक उठे। अनायास ही उनका मुख चिन्ताग्रस्त हो गया। वह कुछ उत्तर दें, इसके पूर्व ही कमलने कमरेमें प्रवेश किया। उसके हाथमें एक मूर्ति थी। बाबू प्रेमनाथके समीप पहुँचकर मूर्ति उनकी ओर बढ़ाते हुए कमलने कहा—'बाबू साहब, मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिये।'

मूर्ति देखकर बाबू प्रेमनाथ आश्चर्यचकित हो गये! अकस्मात् उनके मुखसे निकल पड़ा,—'अरे, यह तो वही मूर्ति है!'

बाबू प्रेमनाथकी बातें सुनकर जज साहबको भी कुछ आश्चर्य हुआ! वे मूर्ति उठाकर देखने लगे। कमलको अवसर मिला। वह चुपकेसे खिसक गया।

× × ×

बहुत दिन बीत गये। कमलने भूलकर भी किसीके सम्मुख यह रहस्य नहीं प्रकट किया कि जिस समय बाबू प्रेमनाथने जज साहबके यहाँ पहुंचानेके लिए मूर्ति सुरक्षित स्थानमें निकालकर बाहर रखी थी, उस समय उसे गायब करनेका अवसर अचानक ही प्रदर्शनी कमेटीके प्रधान-मंत्री के हाथ लगा था।

उन्होंने सावधानीसे मूर्ति उस स्थानसे हटा दी थी और कमलसे यह वचन लेकर उसे मूर्ति सौंप दी थी कि वह मुकदमा उठा लेगा।

× × × ×

जज साहब उस घटनाको यादकर आज भी यह समझनेकी चेष्टा करते हैं कि जिस ढंगसे कमलने बाबू प्रेमनाथको मूर्ति भेंट की, क्या वह सभ्यतापूर्वक बदला चुकानेका कठोरतम ढंग नहीं था?

---

# रेशमो

होटलके चलते-पुरजे कारिन्देने—जो बिलासूके नामसे विख्यात है—दरवाजा खोला और झुककर सलाम करनेके बाद बोला,—'हुजूर, वह आ रही है।'

'आ रही है!' मेरे मस्तिष्कके समस्त तंतु एक साथ ही झन-झना उठे। पहले तो मैं कुछ लड़खड़ाया, किन्तु शीघ्र ही संभल गया। मैंने उसके हाथमें एक पाँच रुपयेका नोट रखा और मुस्करा-कर बोला,—'भेज दो उसे।'

बिलासू चला गया। मैंने सिगरेटका एक कश खींचा और धुँआ उड़ाते हुए सोचने लगा—'इस होटलसे मुझे घृणा थी। इसके पास फटकना भी मुझे अच्छा नहीं लगता था। 'शराब' और 'शोखी' ही इसकी विशेषता है। अब मैं इसीमें ठहरा हूँ। ठहरा हूँ इसलिए कि मैं देखना चाहता हूँ—लखनऊ नर्क है, या स्वर्ग। मैं देखना चाहता हूँ कि जीवन और जवानीका व्यवसाय किस प्रकार होता है। मैं देखना चाहता हूँ कि मनुष्य नामधारी जीव अनैति-कताका शिकार कैसे होता है।

दरवाजा खुलनेकी आवाज कानोंमें पड़ी ही थी कि मेरी विचार-धारा भंग हो गयी। एक गोरी, खूबसूरत लड़कीने मेरे कमरेमें प्रवेश किया। गोरा-गोरा गोल-गोल मुख, भूरे, चमकीले बाल, बड़ी-बड़ी काली-काली आँखें, पतले-पतले गुलाबी ओंठ—ओंठोंपर थिरकनेवाली मुस्कान, आँखोंमें जवानीका नशा! मैं देखता ही रह गया—बुत-सा, गाफिल-सा।

वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाकर मेरे पास पहुँच गयी।—सफेद साटनकी चमकीली सलवार···फिरोजी सिल्कका लम्बा जम्पर··· गुलाबी रंगकी झीनी ओढ़नी······गजबकी खूबसूरत लगती थी वह—खूब फबती थी इस पहनावेमें। मेरी जबान थी बन्द—आँखें स्थिर।

वीणा-विनिन्दित स्वर जा टकराया मेरे कर्णरन्ध्रोंसे—'मुझे घूर क्यों रहे हैं आप!'

बस; मेरा स्वप्न भंग हो गया। मस्तिष्क सचेष्ट हो गया। वह मुस्करा रही थी। शराबकी मादकता लिये हुए थी अपने ओठोंपर। मैंने मुस्कराकर कहा,—'बैठो।'

वह बैठ गयी। मैं पुनः गाफिल सा हो गया—मैं आगसे खेलने बैठा हूँ। यह क्या किया मैंने! क्यों मेरा विवेक मुझे जवाब दे रहा है! शरीर शिथिल क्यों हो रहा है! क्यों परेशान सा है मस्तिष्क!

'क्या सोच रहे हैं आप?'—मेरी विचार-धाराको भंग करते हुए बोली वह।

'मैं······?'

'हाँ······आप।'

'कुछ नहीं!'—कहकर मैंने सिगरेट सुलगाया और उसके मुख-

के आगे धुँएका पारदर्शी पर्दा तानता हुआ बोला—'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'रेशमो ।'

'पंजाबी……?'

'हाँ ।'

'कहाँकी रहनेवाली हो ?'

'लाहौरकी ।'

'यहाँ कैसे आयी ?'

मेरा प्रश्न सुनकर वह कुछ सहम-सी गयी। भयभीत मृगी-सी ताकने लगी मेरी ओर। मुझे लगा—उसकी खूबसूरतीमें चार चाँद लग गये हैं। वह घबरायी सी बोली—'आप पुलिसके आदमी हैं ?'

मुस्कराते हुए मैंने कहा—'नहीं ।'

उसे विश्वास नहीं हुआ। कातर दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए उसने विनय की,—'मुझे क्षमा कीजिये; मुझसे गलती हुई ।'

इतना कहते ही वह न जाने क्यों रोने लगी। क्षण भरमें आँसूकी बड़ी-बड़ी बूँदें आँखोंसे लुढ़ककर उसके अरुणिमालसित कपोलों पर आ जमीं और लगीं मोतियों-सी चमकने झक्-झक्। मैंने कहा,—'रोती हो ।'

उसने उत्तर नहीं दिया। ऊपरके दाँतोंसे नीचेके ओठको दबाकर न जाने क्या सोचने लगी वह। मैंने कहा,—'डरो मत, मैं पुलिसका आदमी नहीं हूँ ।'

'मुझे जाने दीजिये ।'

'जाओगी ?'

'हाँ ।'

'रेशमो ?'

'जी……।'

'तुम डर क्यों गयीं ?'

'मैं······।'

'हाँ······।'

'मुझे डर लग रहा है।'

'डर लग रहा है ?'

'जी।'

'अच्छा जाओ।' कहकर मैंने सिगरेटका एक जोरदार कश खींचा और खिड़कीके समीप जाकर सड़ककी चहल-पहल देखने लगा। लेकिन व्यर्थ ! लाख लाख बार चाहनेपर भी दिल न बहला। रह रहकर रेशमोकी आकृति एक गम्भीर प्रश्न-चिह्नके रूपमें आँखों-के सामने नाचने लगती। हारकर मैं टेबुलके समीप कुर्सीपर आकर बैठ गया। सिगरेटका डब्बा खोलकर मैंने एक सिगरेट निकाला और सुलगाकर मुँहसे लगा लिया। मस्तिष्कमें अनेक प्रश्न एक साथ उठते और तुरन्त ही सिगरेटके धुँएके साथ-साथ वे भी उड़ जाते। कुछ ही देरमें मस्तिष्क शून्य-सा होने लगा। मैं अधजला सिगरेट बुझाकर टेबुलपर रखता और दूसरा सुलगा कर मुँहसे लगा लेता। मालूम नहीं यह क्रम कब तक चलता रहा। मेरी तन्द्रा तो उस समय भंग हुई, जब बिलासूने कमरेमें प्रवेश किया।

वह टेबुलके समीप आकर खड़ा हो गया। वह हैरान हो गया मेरे सामने पड़े सिगरेटके ढेरको देखकर ! विस्फारित नेत्रोंसे वह कभी मेरी ओर देखता और कभी सिगरेटोंके ढेरकी ओर। वह बोला,—'आप इतने सिगरेट पीते हैं हुजूर !'

'हाँ।' कहकर मैं चुप हो गया।

बिलासूने कहा,—'आप कुछ परेशानसे नजर आ रहे हैं। क्या······!'

'बिलासू'—उसकी बात बीच में ही काटते हुए मैं बोल उठा,—'तुम उसे जानते हो ?'

'मैं······

'हाँ, तुम ।'

न जाने क्यों मुस्कराकर बिलासूने उत्तर दिया,—'बहुत सी इसी प्रकार घूमती रहती हैं हुजूर । किसे-किसे याद रखूँ ।'

'तुम उसे नहीं जानते !'

'जी नहीं ।'

'उससे तुम्हारी भेंट कैसे हुई ?'

'इसी जगह—होटलमें ही ।'

'तुमने उससे बातें कैसे कीं ?'

कुछ परेशान सा बोला बिलासू—'बिलासूकी आँखोंसे 'कोई' छिप नहीं सकती बाबूजी । लेकिन आप इतने परेशान क्यों है ?'

मुँहसे सिगरेटका धुआँ उड़ाते हुए मैंने कहा,—'मुझे तुम्हारी बातोंपर विश्वास नहीं होता ।'

'मैं मजबूर हूँ ।' छोटा सा उत्तर था बिलासूका ।

मैंने कहा,—'उसका पता लगा सकते हो ?'

'कोशिश करूँगा ।'

'अच्छा जाओ ।' कहकर मैं पुनः विचार-सागरमें गोते खाने लगा ।

बिलासूके जानेके कुछ ही देर बाद मैं भी होटलसे बाहर चला गया । रातके नौ बज चुके थे । हवामें कुछ नमी थी । हजरतगंजकी उस शानदार सड़कपर कदम बढ़ाते हुए मैं चला जा रहा था । अकस्मात मैंने रेशमोको एक होटलसे बाहर निकलते देखा । न जाने क्यों उसे देखकर कलेजा उछलने लगा । मैं ठिठककर खड़ा हो गया ।

रेशमोने एक बार अगल बगल नजर दौड़ायी—शायद सवारी

के लिए। लेकिन सवारी कोई नजर नहीं आयी, तब वह एक ओर चल पड़ी।

स्टेशनकी ओर जानेवाली उस सड़कके दोनों ओरके वृक्षोंकी पंक्तियोंके कारण बिजलीकी रोशनी कुछ स्याह सी नजर आती। सड़कपर कभी कभी ही कोई नजर आता, अन्यथा कहीं किसी दूसरी सड़कपर गुजरनेवाली मोटरकी आवाजके सिवा पूर्ण शान्ति थी।

रेशमो उस सड़कपर कुछ तेजीसे आगे बढ़ने लगी। उसने लगभग आधा फर्लांगही तय किया होगा कि मैंने आवाज दी —'रेशमो!'

वह ठिठककर खड़ी हो गयी। मैं शीघ्र ही उसके समीप पहुँच गया। मुझे देखकर कुछ सहमी-सी आवाजमें रेशमो बोली, —'आप!'

'हाँ, मैं।'

'आप मेरा पीछा कर रहे हैं?'

'नहीं।'

'फिर आप यहाँ कैसे?'

'केवल संयोगवश।'

'आप चाहते क्या हैं?'

'रेशमो!'

'जी......।'

'मुझे देखकर तुम डर गयी थीं न?'

रेशमोने धीरेसे कहा,—'जी...।'

'रातके समय इस सुनसान सड़कसे अकेले गुजरते हुए तुम्हें डर नहीं लगा!'

रेशमोने मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं दिया। सिर झुकाकर न जाने क्या सोचने लगी। मैंने कहा,–'क्या सोच रही हो?' ...

'मैं······?'

'रेशमो······?'

रेशमोने कुछ विह्वल होकर कहा—'इस प्रकार मेरा रास्ता रोककर आखिर क्या चाहते हैं मुझसे आप?'

मैंने कहा,—'कुछ नहीं। केवल यही कहना चाहता हूँ कि मैं पुलिस कर्मचारी नहीं हूँ। विश्वास करोगी?'

'और यदि अविश्वास करूँ तो?'

'तो मैं चुपचाप चला जाऊँगा यहांसे।'

'और यदि विश्वास करूँ?'

'तो तुमसे केवल एक प्रश्नका उत्तर माँगूँगा।'

'प्रश्न....!'

'हाँ।'

'क्या पूछना चाहते हैं आप?'

'कल मिल सकोगी मुझसे?'

'आप मुझसे मिलना क्यों चाहते हैं?'

'रेशमो...।'

'जी।'

'तुम एक आवारा और ऐयाश लड़कीके रूपमें मेरे सामने आयी थी।'

रेशमो चुप!

'तुमने मेरा मस्तिष्क आन्दोलित कर रखा है रेशमो!'

'मैंने...।'

'हाँ' तुमने।'

'कैसे?'

'याद है, तुम मुझे देखकर रो पड़ी थी ?'

'हाँ... ।'

'मैं नहीं जानता कि मेरा अनुभव गलत था या सही, लेकिन यह सत्य है कि उस समय मुझे तुम्हारी मुखाकृति एक भोली-भाली और निर्दोष युवतीकी मुखाकृति-सी नजर आयी थी ।'

'और अब ?'—पूछा रेशमोने। इस अप्रत्याशित प्रश्नका उत्तर देनेके लिए मैं तैयार न था। फलतः चुप रह गया।

मुझे चुप देखकर रेशमोने कहा—'अच्छा, कल मिलूँगी। जाऊँ न अब ?'

'जाओगी ?'

'हाँ ।'

'अच्छा ।'

रेशमो चली गयी आगे और मैं लौटा पीछे।

दूसरे दिन मैं सुबहसे ही रेशमोकी प्रतीक्षा करने लगा। धीरे-धीरे दिन बीता, फिर शाम हुई और फिर रात।

रेशमो नहीं आयी। मैं सोचने लगा,—क्या वह आयेगी ? यदि नहीं आयी तो ? कैसे पता लगेगा उसका ? मैं भी कैसा मूर्ख हूँ ! पता क्यों न पूछ लिया उससे मैंने !

सहसा बिलासूने मेरेकमरेमें प्रवेश किया। वह कुछ प्रसन्नथा। मैं शून्य दृष्टिसे देखने लगा उसकी ओर। वह बोला—'आप उदास क्यों है बाबू ?'

'कुछ नहीं, यों हीं जरा···।'

'जी नहीं, मैं समझता हूँ ।'

'समझते हो····क्या समझते हो तुम बिलासू !'

'आप उसकी ही चिन्ता में···।'

'क्या मतलब ?'

'वही, जिसका पता कल पूछ रहे थे आप।'

'ओह!' न जाने मैं मुस्करा कैसे पड़ा। मैंने कहा,—'तुम्हारा अनुमान ठीक है।'

'बाबूजी।'

'हाँ बिलासू।'

'यदि—मैं आपको खुश कर दूँ तो…?'

'बिलासू…!'

'कुछ इनाम मिलना चाहिये बाबूजी। मैंने उसका पता लगा लिया है।'

विक्षिप्त सा बोला मैं,—'पता लगा लिया है!'

'हाँ।'

नहीं जानता कैसे कह दिया मैंने,—'कहाँ रहती है वह?'

बिलासूने पता मुझे बता दिया। मैं बैठा रहा चुप—कुछ सोचता सा।

—यदि कोई परिचित मेरी दशा देखले तो…? क्षण भरमें बद-नाम हो जाऊँगा। जीवन व्यर्थ हो जायगा! कैसे दिखा सकूँगा मुँह फिर? चरित्रपर नाज है मुझे—लोग भी चरित्रवान समझकर मेरी इज्जत करते हैं। और मैं…!

'कुछ इनाम मिलना चाहिये बाबूजी।' मुझे सचेत-सा करता बोल उठा बिलासू।

मैंने यंत्रवत् पाँच रुपयेका एक नोट निकालकर बिलासूके हाथमें रख दिया। फौरन ही झुककर सलाम किया उसने और कमरेसे बाहर चला गया।

पहले तो दस-पंद्रह मिनट तक मैं बैठा रहा फिर उठकर होटल-के बाहर चला गया।

पैर आपसे आप रेशमोके घरकी ओर बढ़ते जा रहे थे। मुझे

न अपने तनकी सुध थी और न मन की। रास्तेमें एक रिक्शेवाले-से टकराते-टकराते बचा और यह ताना सुनकर आगे बढ़ गया कि रईस हैं इसलिए घंटी भी नहीं सुनाई देती। कुछ ही आगे बढ़ सका था कि एक रईसकी मोटरके नीचे जाते-जाते बचा। फिर एक तांगेवालेकी जली-कटी सुनी। सब कुछ हुआ लेकिन मैं था कि होशमें नहीं ही आया। मस्तिष्कमें एक बार भी यह प्रश्न नहीं उठा कि आखिर मैं रेशमो के घर जा क्यों रहा हूँ?

अन्तमें उस गलीमें पहुँच ही गया, जहाँ रेशमोका मकान था। कभी दायीं ओर देखता, कभी बायीं ओर—कभी नीचे और कभी ऊपर! प्रश्न उठते जाते थे; पैर बढ़ते जाते थे।—किस मकानमें रहती है वह? जिससे पूछूँ उसका पता? लोग क्या समझेंगे?

अकस्मात् बरामदेपर नजर पड़ते ही मैं ठिठककर खड़ा हो गया। आँखोंके ठीक सामने रेशमो नजर आयी। उसने भी मुझे देख लिया।

वह वहाँसे हट गयी। मैं वहीं खड़ा रहा—बुत-सा, पत्थर-सा।

'अन्दर आइये।' उसकी आवाज सुनकर मैं चौंक पड़ा। देखा, सामने दरवाजेपर रेशमो खड़ी है। कुछ क्षणोंतक तो मैं निर्निमेष दृष्टिसे उसकी ओर देखता रहा, फिर उसकी ओर ही चल पड़ा।

कमरा छोटा था लेकिन साफ-सुथरा। बिना भूमिकाके ही रेशमोने बात शुरू की—'आपको मेरे मकानका पता कैसे लगा?'

अचानक ही मेरे मुँहसे निकल गया—'बिलासूसे।'

'बिलासू कौन?'

'तुम नहीं जानती!'

'नहीं।'

'नहीं!'

'नहीं।'

'वही, होटलका बेयरा।'

'ओह, अब समझी।'

मुझे चुप देखकर रेशमो ही बोली—'लेकिन उसे मेरा पता कैसे मालूम हुआ?'

'जाने दो इन बातोंको रेशमो। उसने इस प्रकार न जाने कितने ही घरोंका पता लगाया होगा।'

'हूँ......', कहकर रेशमो चुप हो गयी और न जाने क्या सोचने लगी। कुछ देर तक मैं भी चुप बैठा रहा। अन्तमें मैंने ही शान्ति भंग की,—'तुम आयी क्यों नहीं?'

रेशमोने उत्तर दिया,—'जानती थी कि आप यही प्रश्न पूछेंगे।'

'तो फिर उत्तर भी सोच लिया होगा?'

'कोशिश की थी लेकिन...।'

'लेकिन सोच नहीं सकी।....यही न?'

'हाँ।'

मैं बातें तो कर रहा था, लेकिन माथेमें भयंकर पीड़ा हो रही थी। ओंठ हिलानेमें भी कष्ट होता था। मैं परेशान था—हत्‌बुद्धि!

'क्या सोच रहे हैं आप?'—बोली रेशमो।

'कुछ नहीं...कुछ नहीं।'—खड़े होते-होते मैंने कहा;—'अच्छा ...अच्छा...फिर देखा जायगा। अब जा रहा हूँ।'

'जा रहे हैं!'

'हाँ।'

'आप आये क्यों थे?'

'मैं...मैं...कुछ नहीं...यों ही...अच्छा, अब जा रहा हूँ।'

रेशमो परेशान थी। उसका मुख उतर गया। एक वार तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं पूर्णतः स्वस्थ हूँ, किन्तु शीघ्र ही पहले सी

अवस्था हो गयी, बल्कि यों कहा जाय पीड़ा बढ़ गयी। जी भी मिचलाने लगा। मैंने फौरन ही घरसे बाहर निकल जाना चाहा, लेकिन जा न सका। संज्ञाहीन होकर वहीं गिर पड़ा।

मालूम नहीं मैं कबतक बेहोश था। जब आंखें खुलीं, तब भी सिरमें पीड़ा हो रही थी। मेरे सिरपर कपड़ेकी गीली और ठंढ़ी पट्टी रखी थी। सिरके समीप बैठी थी रेशमो, सामने एक वृद्ध महोदय थे और बगलमें अधेड़ अवस्थाकी एक स्त्री।

कुछ ही मिनटोंके बाद उस वृद्ध व्यक्तिने कहा—'कैसी तबीयत है बेटा ?'

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। आँखें पुनः बन्द कर लीं। कौन हो सकता है यह वृद्ध व्यक्ति ? रेशमो इसकी पुत्री तो नहीं है ? रेशमोने क्या कहा होगा ? वह मुझे क्या समझ रहा होगा ?

मैंने पुनः धीरे-धीरे आँखें खोल दीं। इस बार भी उस वृद्धने ही शान्ति भंग की,—'घबराओ मत बेटा। तुम शरत्‌के मित्र हो न। तुम भी उसीके समान हो।'

मैं आँखें फाड़-फाड़ कर छतकी ओर देखने लगा। अकस्मात् ही मुँहसे निकल गया—'शरत्···शरत् कौन ?'

उस वृद्धने कहा,—'अरे, भूल गये! वही शरत्, जिसे खोजते-खोजते तुम यहाँ आ पहुँचे।'

न जाने क्यों उस वृद्धकी आँखें भर उठीं। मैं कुछ समझा नहीं। फिर बोल उठा,—'शरत्···!'

रेशमोने छिपे छिपे चुप रहनेका संकेत किया। वृद्धने कहा,—'वही···वही जो लाहौरमें पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट था।'

'पुलिस सुपरिण्टेंडेंट',···मेरा माथा भन्ना उठा,—'कौन पुलिस सुपरिण्टेंडेंट! किसकी बात कह रहे हैं आप! मैं किसीको नहीं

जानता···मैं किसीको नहीं जानता। रेशमोको जानता हूँ···रेशमो-को···केवल रेशमोको···।'

माथा फट-सा रहा था। आँखें खोलनेकी हिम्मत नहीं हो रही थी। मैंने पुनः आँखें बन्द कर लीं।

'रेशमोको जानते हो!'—उस वृद्धकी आवाज मेरे कर्ण-कुहरोंमें प्रविष्ट हुई,—'तुम शरत्को नहीं जानते; रेशमोको जानते हो!'

वह चुप हुआ ही था कि मेरी आँखें आपसे आप खुल गयीं। मैंने देखा—वह घूर घूरकर रेशमोकी ओर ताक रहा है और रेशमो? उसका मुँह सफेद हो गया था। दिल भी शायद धड़क रहा हो। उसकी भोली भाली सूरत मेरी आँखोंके सामने नाचने लगी।

उस वृद्धने रेशमोके मुखपर अपनी दृष्टि जमाते हुए कहा,—'···तो तुमने झूठ कहा······।'

'पिताजी······।'—बोली रेशमो।

'रेशमो······?'—वृद्धकी आवाज कड़ी थी।

'जी······।'

'कौन है यह?'

'मैं नहीं जानती।'

'नहीं जानती?······झूठी······।'

बस; आगे चुप रहना मैंने खतरनाक समझा। क्यों? इसका उत्तर मैं नहीं दे सकता। रेशमोकी भयाकुल किन्तु मोहमयी आकृति देखकर मैं तड़प उठा। ऐन मौकेपर सूझ आ गयी। मैं लगा पागलों सा बकने-झकने।

मेरी अवस्था देखकर वृद्ध और भी क्रुद्ध हो गया,—'शायद शराब····;·शराबका नशा था।'

रेशमो बोल उठी,—'पिताजी।'

लेकिन वृद्धने कुछ न सुना। 'नहीं....नहीं...मैं यह सहन नहीं कर सकता। मैं पुलिसको बुलाता हूँ...पुलिसको....पुलिसको।'

मैंने उसे बाहर जाते हुए देखा और देखा रेशमोकी भींगी आँखोंको। उसने मुझे बाहर चले जानेका संकेत किया, लेकिन मैं उठा नहीं। मालूम नहीं मुझे क्या हो गया था। जबतक बात कानोंमें पड़ती रहती, तबतक मस्तिष्क काम करता। उसके बाद ही शून्य सा हो जाता।

मुझे उठते न देखकर रेशमो 'पिताजी, पिताजी' कहती हुई उस वृद्धके पीछे दौड़ी। शायद वह उसके पास पहुंच गयी थी। मैं स्पष्टतः उसकी आवाज सुन रहा था। उसका कंठ-स्वर करुण था। वह कह रही थी,—'रुक जाइये, रुक जाइये पिताजी। वह शराबी नहीं हैं...... उन्होंने शराब नहीं पी है।'

इसके बाद ही इस प्रकार वार्त्ता होने लगी—'शराब नहीं पी...।'

'जी–हाँ...शराबकी गंध भी कभी छिप सकती है पिताजी ?'

'गंध......।'

पिताजी......!'

'अरे तुम रो रही हो ?'

'हाँ।'

'क्यों !....क्या हुआ है तुम्हें ! कौन है वह ? तुमसे...तुमसे उसका संबंध......?'

रेशमो चुप।

यह वृद्धकी ही आवाज थी—'तुम बोलती क्यों नहीं—जवाब क्यों नहीं देती ?......ओह, यह तुमने क्या किया ! मैं पागल हो जाऊँगा।...पागल हो जाऊंगा–मैं पागल हो जाऊँगा रेशमो......।'

इसके बाद किसीकी आवाज नहीं सुनायी दी। दूसरे ही क्षण

मैंने देखा रेशमो पिताको अपने कंधेका सहारा देकर कमरेमे ला रही है। उसका मुख आँसुओंसे भरा था। यद्यपि मेरी नस-नस टूट रही थी, फिर भी अब रहा न गया। मैं उठ बैठा और बिना कुछ बोले, बिना किसीकी ओर देखे घरसे बाहर निकल गया।

× × ×

दो दिन बीत गये, रेशमोसे भेंट नहीं हुई। मैं बुखारके कारण उसके घर इच्छा रहते हुए भी जा न सका। इन दो दिनोंके अंदर मेरा मुख एक दम उतर गया। लगता था, महीनोंसे बीमार हूँ।

एक ओर ज्वरसे परेशान था, दूसरी ओर रेशमोकी स्मृति सता रही थी,—तो रेशमोका भाई पुलिस अधिकारी है।······फिर वह पुलिसके नामसे डरती क्यों है?···कौन-सा रहस्य छिपाये बैठी है वह अपने हृदयमें? लगता है···वह बेबस है····पीड़ित··· निरीह! उसका हृदय स्वच्छ है···वह पापिन नहीं हो सकती··· 'तितली' नहीं हो सकती—लेकिन होटलोंमें···ओफ, किस चक्करमें फँस गया हूँ मैं।'

मैंने बरबस विचार-धारा भङ्ग की। आँखें बन्द कर लीं और दोनों हाथोंसे सिर जकड़ लिया जोरसे।

दरवाजा खुलनेकी आवाज सुनकर मैंने आँखें खोलीं। सामने बिलासू खड़ा था। उसने एक लिफाफा मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा,—'कैसी तबीयत है बाबूजी? डाक्टरको बुला दूँ।'

मैंने लिफाफा उसके हाथसे ले लिया और बोला,—'ठीक है··· ठीक है···तुम जाओ···ठीक हो जायगी।'

लिफाफा हाथमें आया ही था कि उसके सम्बन्धमें क्षणभर पूर्व उत्पन्न उत्सुकता फौरन नष्ट हो गयी। वह रेशमोका नहीं मेरे एक मित्रका पत्र था।

पत्र मैंने उसी प्रकार टेबुल पर रख दिया और पलंगपर जाकर लेट रहा। धीरे-धीरे नींद आ गयी।

जब नींद खुली, तब रेशमोंको अपने सामने बैठा पाया। उसे देखकर मुझे कुछ आश्चर्य तो हुआ, लेकिन मैंने उसे व्यक्त न होने दिया।

पलंग परसे उठते हुए मैंने स्वाभाविक रूपमें कहा,—'कब आयी रेशमो ?'

'बीस मिनट पहले।'

'बीस मिनट पहले ! तुमने मुझे जगा क्यों न दिया ?'

अनमनीसी बोली रेशमो,—'यह मैं स्वयं नहीं जानती।'

रेशमो चुप हो गयी। मैं भी नहीं बोला। कमरा सायँ-सायँ करने लगा।

इसी प्रकार धीरे-धीरे पाँच मिनट बीत गये। न उसने सिर उठाया, न मैंने। अन्तमें रेशमोंने ही शान्ति भङ्ग की,—'आप मुझे क्षमा करेंगे ?'

'यदि अपराधिनी होगी तो...?'

'आप क्या समझते हैं ?'

'मैं तो अबतक कुछ नहीं समझ पाया हूँ रेशमो। कुछ समझा ही होता तो, परेशान क्यों रहता।'

'आप क्या समझना चाहते हैं ?'

'मैं...!'

'हाँ आप।'

'मेरे प्रश्नोंका उत्तर दोगी ?'

रेशमोने शान्त स्वरमें दृढ़तासे उत्तर दिया,—'अवश्य।'

मैंने कहा,—'तुमने पुलिसके प्रति शंका क्यों व्यक्त की थी ?'

'आप शरत्‌का नाम सुन ही चुके हैं।'

'हाँ।'

'आपको यह भी ज्ञात है कि वह पुलिस सुपरिटेंण्डेण्ट थे ?'

'हाँ।'

'तो सुनिये'—कहकर क्षणभरके लिए रेशमो चुप हो गयी और बोली,—'मेरे पिताजीके पास काफी सम्पत्ति थी। दङ्गेमें सब कुछ जाता रहा। इससे पिताजीको काफी सदमा पहुँचा। सम्भव था कि धनकी चोट वह सँभाल लेते, किन्तु भाग्यमें तो कुछ और बदा था। इसी बीच मेरे भाई शरत्‌को किसीने उसी दङ्गेमें गोली मार दी। इस घटनाने उनकी हिम्मत तोड़ दी। वह विक्षिप्तसे हो गये।'

कुछ देर तक चुप रहनेके बाद रेशमोने पुनः कहना प्रारम्भ किया,—'किसी तरह हम—मैं, पिताजी, और माताजी—लाहौरसे अमृतसर पहुँचे। वहाँका अशान्त वातावरण पिताजीको अच्छा न लगा—हम दिल्ली आ गये। वहाँकी स्थिति भी वैसी ही थी। पिताजी वहाँ भी न रुक सके। फिर हम लखनऊ आये।'

रेशमो पुनः चुप हो गयी। मैं भी बैठा था—शान्त, मूक, ! रेशमो ही बोली,—'इस घटनाको शायद आठ महीने हो चुके हैं। पासकी पूँजी धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही थी। आगे किसीका सहारा न था। मैं कुछ परेशानसी रहती ! पिताजी यदा-कदा बड़बड़ा उठते,—घबरानेकी कोई बात नहीं...कुछ नहीं...सब ठीक हो जायगा। शरत्‌के बहुतसे मित्र हैं। कभी न कभी कोई अवश्य आयगा।

मैं कुछ भयभीतसी हो गयी। मुझे ऐसा लगा कि यदि पैसेकी समस्या उत्पन्न हो गयी, तो पिताजी पागल हो जायेंगे। इस विचारके उत्पन्न होते ही मेरी रही-सही हिम्मत भी जाती रही। बहुत सोचने-विचारनेके बाद मैंने नौकरी करनेका निश्चय किया।

यह निश्चय मैंने पिताजीके सम्मुख व्यक्त भी कर दिया। वह मेरी बातें सुनकर इतने जोरसे हँसे कि मैं डर गयी।

'दो दिन बीत गये। इसी बीच मैंने पिताजीको समझा-बुझाकर राजी कर लिया।'

'नौकरीके लिए परिश्रम न करना पड़ा। एक दफ्तरमें काम मिल गया। कुछ ही दिनों तक काम करनेके बाद मुझे ज्ञात हो गया कि निष्पाप जीवन व्यतीत करते हुए नौकरी करते रहना सम्भव नहीं है। मेरे हृदयपर कड़ा आघात हुआ। ज्योंही नौकरी छोड़ देनेका विचार उठता, पिताजीकी मनःस्थितिकी अशुभ कल्पना उसे दबा देती। मैं परेशान रहने लगी। एक ओर माता-पिताकी दयनीय मानसिक स्थितिकी कल्पना हृदय कचोटती, दूसरी ओर पाप-पूर्ण असामाजिक जीवनकी विभीषिका!

'मैं नौकरी न छोड़ सकी। न जाने कैसे आपसे आप पाप-पंकमें फँस गयी।'

रेशमो चुप हो गयी, तब मैंने पूछा—'फिर?'

'फिर क्या!' जबरदस्ती मुस्कराते रहनेका प्रयास करने लगी वह। 'कुछ ही दिनोंमें अभ्यास हो गया। होटलोंके दरवाजे आपसे आप खुल गये। इसी सिलसिलेमें आपसे मुलाकात हुई। आपकी आँखें मुझे कुछ खोजती-सी प्रतीत हुईं। वासनाकी गन्धतक न मिली। मुझे आपपर शंका हुई। मैंने सुन रखा था कि पुलिस होटलोंमें होनेवाले असामाजिक कार्योंका पता गुप्त रूपसे लगाती है। आपके प्रश्नोंके कारण मुझे आपसे भय लगा—इसलिए नहीं कि आप मेरा कुछ नुकसान कर सकेंगे, क्योंकि इन थोड़ेसे दिनोंमें मुझे अच्छी तरह अनुभव हो गया है कि पुरुष-समाजमें नाममात्रके लिए भी नैतिकता शेष नहीं। अपनी जवानीके मूल्यपर मैं बड़ेसे

बड़े अपरिचित अधिकारीसे लेकर सेठ-साहूकारों तकको खरीद सकती हूँ।'

इतना कहते-कहते रेशमोका दम फूलने-सा लगा। वह कुछ रुक गयी, फिर बोली—'आपसे डर लगा था इसलिए कि मुझे आपके मुखपर वही सचाई नजर आयी जो मुझे अपने भाईके मुखपर नजर आती रही। मुझे शंका हुई कि यदि आप कहीं पुलिस अधिकारी हुए; तो मेरे भाईसे परिचित भी हो सकते हैं। यदि सचमुच आप भैयासे परिचित हुए, तो मेरी स्थितिके कारण आप उनसे घृणा करने लगेंगे। मेरा पाप मेरे भाईको भी कलंकित कर देगा। यह सोचकर ही मैं थर्रा गयी। फिर पिताजीके जीवनमें पुनः अशान्ति उत्पन्न होनेका भी अन्देशा था। मैं नहीं चाहती थी कि......।'

रेशमोकी बातें सुनकर मुझे अत्यधिक पीड़ा हुई। समाजके प्रति तीव्र घृणासे मेरा हृदय भर गया। मैं चाहता था कुछ सहानुभूति व्यक्त करना, किन्तु जबान खुलती ही न थी। बड़ी मुश्किलसे मैं कह पाया—'तुमने मेरी बातोंपर विश्वास क्यों किया रेशमो!'

रेशमोने उत्तर दिया—'यह मैं स्वयं नहीं जानती। केवल इतना ही कह सकती हूँ कि पहले ही दिन जब दूसरे बार सड़कपर आपसे बातचीत हुई, तब न जाने किस रूपमें मैं आपकी ओर आकृष्ट हो गयी। मुझे आपकी बातें सन्तोषप्रद प्रतीत हुईं। हृदयका भार कुछ हल्का हुआ लगा।'

'रेशमो।'

'जी।'

'एक बात जानती हो?'

'क्या?'

'भारतीय नारी अपने शरीरका सौदा नहीं करती ।'

'जानती हूँ ।'

'फिर तुमने यह गौरवमयी परम्परा ठुकरायी क्यों ?'

'मजबूर थी ।'

'मजबूर नहीं, दुर्बल कहो रेशमो । आत्म-बलिदानके लिए सदैव प्रस्तुत रहनेवाली भारतीय नारी कभी मजबूर नहीं होती ।'

'यही समझ लीजिये ।'

'रेशमो ।'

'जी ।'

'अपने जीवनका प्रवाह बदल सकती हो ।'

'काश, बदल सकती !' आह भरते हुए बोली, रेशमो—'मालूम नहीं मेरे भाग्यमें क्या-क्या बदा है ।'

......

मैंने कहा—'अच्छा जाओ रेशमो, शामको फिर मिलूँगा ।'

रेशमोने कहा—'अब मुलाकात नहीं हो सकती ।'

'क्यों ?'

'एक घंटेके बाद ही लखनऊसे बाहर चली जाऊँगी । पिताजी अब यहाँ रहनेके लिए प्रस्तुत नहीं है ।'

'कहाँ जाओगी ?'

'नहीं जानती ।'

'नहीं जानती !'

'विश्वास कीजिये, मैं सच कह रही हूँ ।'

मैंने गम्भीर होकर कहा—'यह नहीं हो सकता रेशमो !'

'क्या कहना चाहते हैं आप ?'

'यही कि तुम्हें असहाय नहीं छोड़ सकता ।'

'क्या करेंगे आप ?'

'मैं,...' कुछ रुक कर मैंने कहा,—'और तो कुछ नहीं कर सकता रेशमो। हाँ, शरत्का स्थान भरनेकी चेष्टा अवश्य करूँगा।'

रेशमो अवाक् हो गयी। वह आँखें फाड़-फाड़कर मेरी ओर देखने लगी।

मैंने स्नेह-स्नात कण्ठसे कहा,—'जाओ रेशमो, पिताजीसे कह दो कि उनका शरत् मेरे रूपमें जीवित है। रेशमो अब निराश्रिता नहीं है।'

...और रेशमो फूट-फूटकर रोने लगी।

× × ×

काश्, इस कहानीका अन्त यहीं हो जाता। लेकिन होता कैसे! मेरे भाग्यमें तो कुछ और ही देखना लिखा था।

उसी दिन शामको जिस समय मैं आत्म-सन्तोषकी उत्साह-वर्द्धक अनुभूतिके सहारे सारी परेशानियोंकी उपेक्षा करता हुआ रेशमोके घरपर जानेकी तैयारी कर रहा था, उसी समय रेशमोका एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—'जिस समय मैं घर पहुँची, उस समय तक पिताजी घर छोड़नेके लिए पूर्णतः तैयार हो चुके थे। इधर मैंने घरके भीतर पैर रखा, उधर उन्होंने तांगेवालेको बुलाया।

'सामान तांगेपर लादा जा रहा था और मैं उसे देख रही थी। पिताजीकी मुखमुद्रा देखकर मुझे कुछ बोलनेका साहस न हुआ।

'जा रही हूँ भैया। कहाँ जा रही हूँ, यह तो पता नहीं, लेकिन विश्वास करना, यदि तुम्हारे पावन स्नेहकी रक्षा करते हुए जीवन व्यतीत कर सकनेमें समर्थ रही, तो तुम्हें मेरा पता ज्ञात हो जायगा, अन्यथा अपनी जीवनकथाके अन्तिम पृष्ठके रूपमें पत्र लिखकर आत्मघात कर लूँगी। अच्छा विदा—

रेशमो।'

पत्र मेरे हाथसे छूटकर गिर पड़ा। सारा आत्म-सन्तोष क्षण-भरमें काफूर बनकर उड़ गया। जीवनमें प्रथम बार मुझे यह अनुभव हुआ कि मैं कितना असहाय हूँ—असमर्थ!

एक बदकिस्मत बहनकी भी सहायता न कर सका मैं!

---